सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

वर्ष : 44, अंक : 3
जून : 2011

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृत कण

विद्वान प्रशस्यते लोके विद्वान् गच्छति गौरवम्।
विधया लभ्यते सर्व विद्या सर्वत्र पूज्यते।।

(चाणक्यनीति दर्पण)

अर्थात् इस संसार में विद्वान ही प्रशंसित होता है, विद्वान ही सर्वत्र आदर पाता है। विद्या से ही मनुष्य धन–धान्य, मान–प्रतिष्ठा आदि सब कुछ प्राप्त कर लेता है। विद्या का हर क्षेत्र में आदर होता है। 'विद्या ददाति विनयं' के अनुसार विद्या से विनम्रता आती है।

◆ ◆ ◆

योग युक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते।।

(श्रीमद् भगवद् गीता)

अर्थात् जो भक्तिभाव से कर्म करता है, विशुद्ध आत्मा है और अपने मन तथा इन्द्रियों को वश में रखता है, वह सबका प्रिय होता है और लोग उसे प्रिय होते हैं। ऐसा व्यक्ति कर्म करता हुआ भी कभी कर्मफल से बंधता नहीं।

◆ ◆ ◆

श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रिय।
ज्ञान लब्ध्वा परां शान्तिम चिरेणाधिगच्छति।।

(श्रीमद् भगवद् गीता)

जो जितेन्द्रिय है साधन परायण है और श्रद्धावान है उस मनुष्य को ज्ञान प्राप्त होता है तथा ज्ञान को प्राप्त कर वह तत्क्षण भगवत–प्राप्ति रूप परमशान्ति को प्राप्त हो जाता है।

◆ ◆ ◆

ईर्ष्यी घृणी त्वसन्तुष्टः क्रोधनो नित्यशंकितः।
परभाग्योपजीवी च षडेते दुःख भागिनः।।

ईर्ष्या करने वाला, घृणा करने वाला, सदा असन्तुष्ट रहने वाला, सदा क्रोध करने वाला, सदा वहम में डूबा रहने वाला और दूसरे के भाग्य–भरोसे जीने वाला– ये छः प्रकार के लोग सदा दुःखी रहते हैं और दूसरों को भी दुःखी करते हैं।

◆ ◆ ◆

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :— शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली "सिद्धयोग" नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 44 अंक : 3

दिवसेनैव तत्कुर्याद् येन रात्रौ सुखं वसेत।
अष्टमासेन तत्कुर्याद् येन वर्षा सुखं वसेत।।
पूर्वे वयसि तत्कुर्याद् येन वृद्धः सुखं वसेत।
यावज्जीवने तत्कुर्यादयेन प्रेत्य सुखं वसेत।।

मनुष्य को चाहिए कि दिन में ऐसा कार्य करे जिससे रात में सुख की नींद सो सके, निश्चित रह सके। वर्ष के आठ महीनों में ऐसा कर्म करे कि वर्षा ऋतु में सुख पूर्वक रह सके। आयु के पूर्वार्द्ध में ऐसा कर्म करे कि जिससे वृद्धावस्था में सुख पूर्वक रह सके और जीवन भर ऐसे शुभ कर्म करता रहे कि मरने के बाद का जीवन भी सुखी रहे।

जून 2011

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY
Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1. विशेष लेख –योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. सम्पादकीय 7
3. लक्ष्मी की स्थिरता –कृष्ण कुमार पाण्डेय 10
4. महाप्रभु पूर्व योगेश्वर श्री रामलाल जी की महिमा –डॉ. जे.पी. शर्मा 12
5. गुरुजी के बाद [illegible] गुरुधाम –अवनीश भटनागर 13
6. कर्म–अकर्म–विकर्म तथा कर्म सन्यास का रूप क्या है? –रघुवीर चन्द ठाकुर 17
7. गुरु दोहावली –दिनेश शर्मा 20
8. अष्टांग योग –प्रो. ऋषिराम शर्मा 21
9. मेरे गुरुदेव योग की सर्वोच्च सत्ता –केशव उपाध्याय 25
10. श्री कामाख्या यात्रा वृत्तान्त –डॉ. विजय सिंह 31
11. अवतार मीमांसा –जय नरायण 34
12. भजन –अनुराग तिवारी 37
13. श्री गीतामृत पदावली –डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी 38

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 140.00
द्विवार्षिक	: रु. 270.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

● *हमारा विशेष लेख*

योगासन एवम् ऊर्ध्वरेतसता

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

षटचक्रों के अन्दर मणिपूरक नामक नाभि का चक्र है। मणिपूरक चक्र का स्थान नाभिमण्डल है। नाभिमण्डल ही वीर्याशय यानी वीर्य का स्थान है। मनुष्य के मन में जब किसी प्रकार की काम–वासना का उदय होता है तो कामाग्नि की ऊष्णता से वीर्य सारे शरीर से आकर्षित होकर स्खलन की ओर जाता है। आयुर्वेद के परमाचार्य श्री वागभट्ट ने वीर्य को वपुसार, जीवनाशय, गर्भबीज आदि नामों से उद्घोषित किया है। जैसे:–

शुक्रं सौम्यं सितं स्निग्धं बलं पुष्टिकरं स्मृतम्।
गर्भ बीजं वपुः सारो जीवनाश्रय उत्तमः।।

अतः इसका सारे शरीर में व्यापक रहना जीवधारियों के लिए बहुत ही आवश्यक है। जो व्यक्ति किसी भी प्रकार का व्यायाम नहीं करते हैं, खट्टे–मीठे पदार्थ खाते रहते हैं, उनके मन में काम–वासना बढ़ती रहा करती है। खाली बैठे रहने से मन में कुभावनायें आती हैं और शनैः शनैः कुकर्म–चेष्टायें बढ़ने लगती हैं, जिससे मनुष्य उन्नति के लिए प्राप्त हुए अपने पवित्र जीवन को पतन की ओर ले जाने का कारण बन जाता है। इसलिए वीर्य को ऊर्ध्वरेतस बनाने के लिए साधक को पहले ऐसा प्रयत्न कर लेना चाहिए कि वपुसार जीवनाश्रय वीर्य को सारे शरीर में व्यापक कर डाले। वीर्य को शरीर में व्यापक करने के लिए यह बहुत ही आवश्यक है कि मनुष्य व्यायाम की आदत डाले। व्यायाम करने के जितने प्रकार आज भारत व दूसरे देशों में प्रचलित हैं वे सब मनुष्यकृत होने के नाते अधिक लाभदायक नहीं हैं। ऐसे सभी व्यायाम शारीरिक जड़ता के दाता हैं। ये वीर्य को शरीर में व्यापक तो बनाते हैं किन्तु उसका प्रभाव सभी अंगों पर समान रूप से नहीं पड़ता। स्नायु कहीं–कहीं तो बहुत ही दृढ़ हो जाते हैं जिससे सारे शरीर में रस व रक्त का समान रूप से वहन नहीं हो पाता। जो व्यायाम हमारे पूर्वज योगाचार्यों ने अपने ग्रंथ में लिखे हैं वे सभी उनकी ऋतम्भरा प्रज्ञा की उत्तम देन हैं और ये सभी व्यायाम स्नायु–मण्डल को कोमल, रस व रक्त का ठीक तरह से वहन करने वाले बनाते हैं एवं मन की एकाग्रता के दाता हैं, अतः शरीर को नीरोग, हल्का, फुर्तीला ओज–तेज प्रधान एवं वीर्य को शरीर को व्यापक बनाने के लिए योगासन बहुत उपयोगी है। जो लोग किसी योग शिक्षण केन्द्र में जाकर नियमानुवर्तिता से योगासनों का अभ्यास करते हैं उनका वीर्य शरीर में व्यापक हो जाता है। कामोद्दीपक भावनायें स्वतः ही शान्त होने लगती हैं तथा मन आत्म–चिन्तन की ओर बढ़ने लगता है। योगासनों का व्यायाम सभी प्रकार से उत्तम है, किन्तु वीर्य को शरीर में

व्यापक बनाये रखने के लिए उदर-सम्बन्धी आसनों का अभ्यास बहुत ही आवश्यक हो जाता है। जैसे- उत्तानपादासन, पवनमुक्तासन, नावासन, नाभ्यासन, धनुरासन, शलभासन, मत्स्यासन, मत्स्येन्द्रासन आदि। ये सभी आसन पेट से सम्बन्ध रखने वाले हैं। योग शिक्षण केन्द्रों में सभी आसन नियमानुसार कराये जाते हैं। अभ्यासी लोग पहले खड़े होने के आसन करते हैं उसके बाद बैठने-लेटने के आदि क्रमानुसार करते हैं।

उपरोक्त विधि के अनुसार वीर्य शरीर में व्यापक तो हो ही जायेगा, किन्तु ऊर्ध्वरेतसता प्राप्त करने के लिए कुछ खास-खास अभ्यास हैं जिनका दिग्दर्शन हम निम्नलिखित पंक्तियों में कर रहे हैं।

हमारे योगाचार्यों ने 'सिद्धासन' को सर्व सिद्धियों का दाता बतलाया है। 'सिद्धासन' की एक विशेषता यह है कि उसके करने से मनुष्य स्वाभाविक ही संयतेन्द्रिय बन जाता है क्योंकि सिद्धासन लगाने से वीर्यवाहिनी नाड़ी संकुचित हो जाती है और उस नाड़ी के दब जाने से वीर्य का अधोवेग रुककर ऊर्ध्ववेग बन जाता है। 'सिद्धासन' का प्रकार योगाचार्य भगवान सदाशिव ने शिवसंहिता में इस प्रकार बतलाया है:-

योनिं संपीड्य यत्नेन पाद मूलेन साधकः।
मेढ्रोपरि पादमूलं विन्यसेत योगवित्सदा।।
ऊर्ध्वं निरीक्ष्य भ्रूमध्यं निश्चलः संयतेन्द्रियः।
विशेषोऽवक्रकायश्च रहस्युद्वेगवर्जितः।।
एतत्सिद्धासनं ज्ञेयं सिद्धानां सिद्धिदायकम्।

अर्थात्- अपने बायें पैर की एड़ी को अण्डकोषों के नीचे योनिस्थान में (जिसको सीवनी कहते हैं) ले जाकर दृढ़ता के साथ जमा दो। पीछे गुदाद्वार के नीचे कोई कपड़ा या कपड़े की साधारण सी गद्दी रख दो जिससे लिंगनाल को दबाने में वह गद्दी सहायक हो जाये। इस प्रकार बायें पैर की एड़ी को योनिस्थान में दृढ़ता से जमाकर दाहिने पैर की एड़ी को लिंगनाल के ऊपर जमाकर रखो। दोनों पैरों के टखने परस्पर मिले हुए हों। एक पैर लिंगेन्द्रिय के नीचे योनिस्थान में हो और दूसरा लिंगेन्द्रिय के ऊपर जमा हुआ हो। इस विधि से बैठ जाओ। अपने मेरुदण्ड को सीधा रखो। दोनों हाथों को तनाव के साथ घुटनों पर रखो एवं दृष्टि को भ्रूमध्य में ले जाओ, दृष्टि थोड़ी सी झुकी हुई हो। मन में कोई भी उद्वेग न हो। इसको योगाचार्यों ने सिद्धासन कहा है।

जो लोग केवलमात्र सिद्धासन का अभ्यास करते रहते हैं उनके भी मनोविकार शांत हो जाते हैं और वीर्य की अधोगति रुक करके वेग ऊपर की ओर बढ़ने लगता है।

इसके साथ एक विशेष प्रकार का प्राणायाम करो। अपने प्राणवायु को वेग के साथ बाहर निकाल दो। उड्डियान बंध के साथ आधार चक्र को ऊपर की ओर खींचो और प्राणवायु को रोक दो। आधार चक्र खींचे रहो। अपने मन में धारणा करो कि मैं अपने वीर्य को

ऊपर की ओर खींच रहा हूँ। अनुभवी सन्तों ने इस प्राणायाम में लिंगेन्द्रिय को ऊपर की ओर खींचने की भी विधि लिखी है, किन्तु नाभिमण्डल से नीचे की नाड़ियों को अपने हाथ की हथेली से तनाव देकर रखोगे तो भी परिणाम वही निकलेगा। अपने पेट की वायु को बाहर निकाल देने पर उसको यथाशक्ति बाहर रोके रहना चाहिए। जब घबराहट मालूम पड़े तब धीरे-धीरे उस वायु को अन्दर ले लो, किन्तु अन्दर रोकने का अभ्यास नहीं करना चाहिए। वर्षों तक योग साधक यदि इस प्राणायाम को करता रहता है तो वह अवश्य ही ऊर्ध्वरेतस बन जाता है। उसका वीर्य ऊर्ध्वगमन करने लगता है और वह बिन्दुजय कर लेता है।

सिद्धे बिन्दौ महायत्ने किं न सिद्धयति भूतले।

अर्थात्-बिन्दुजय प्राप्त करने के बाद ऐसा कोई साधन नहीं जिसको मनुष्य न कर सके। योगदर्शन में ब्रह्मचर्य-प्रतिष्ठा का फल बतलाया है:-

ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।

यस्य लाभादप्रतिघात् गुणानुत्कर्षयति सिद्धश्च विनियेषु ज्ञानमाधतुं समर्थो भवतीति।

अर्थात्-इस प्रकार ब्रह्मचर्य धारण करने से योगी अपने शरीर में अलौकिक गुणों का आकर्षण कर लेता है और शनैः शनैः उसका मन-बुद्धि का इतना ऊँचा विकास हो जाता है कि उसे अपने विनीत शिष्यों के अन्दर शक्ति संचार करने की योग्यता आ जाती है। इसलिए उपरोक्त साधनाओं द्वारा साधक को अपने आपको ऊर्ध्वरेतस बनाने का प्रयत्न करते रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्यान्य योग साधनों में शक्तिचालिनी मुद्रा जो वज्रासन के अभ्यास से की जाती है वह भी ऊर्ध्वरेतसता की जननी है। शक्तिचालिनी मुद्रा के अन्दर विपरीत पाद वज्रासन लगा करके भस्त्रिका प्राणायाम किया जाता है, जिसके फलस्वरूप कुण्डलिनी महाशक्ति का जागरण एवं वीर्य का ऊर्ध्वकर्षण अनायास ही होता है।

शीर्षासन एवं ऊर्ध्वरेतसता

शीर्षासन हमारे योगाचार्यों की अमर देन है इसको विपरीतकरणी मुद्रा के रूप में भी बतलाया गया है। जो लोग नियम से विधिपूर्वक शीर्षासन का अभ्यास करते हैं उनका वीर्य भी ऊर्ध्वगमन करने लगता है किन्तु शीर्षासन के अभ्यासियों को चाहिए कि इस विपरीतकरणी मुद्रा को किन्हीं योग-शिक्षण केन्द्रों में जाकर सीखें। शीर्षासन के अभ्यासी लोगों को मस्तिष्क का ऊपर वाला भाग जिसे कपाल कहते हैं, वही जमीन पर लगाना चाहिए और अपने आहार का ख्याल रखना चाहिए। इसके अभ्यास के शास्त्रीय लेख है।

अधः शिरश्चोर्ध्वपादः क्षणं स्यात्प्रथमे दिने।
क्षणाच्च किञ्चिदधिकमभ्यसेच्च दिने दिने।।
वलितं पलितं चैव षण्मासोर्ध्व न दृश्यते।
याममात्रं तु यो नित्यमभ्यसेत्स तु कालजित्।।

अर्थात्–पहले दिन एक क्षण के लिए शीर्षासन करना चाहिए। दूसरे दिन एक क्षण से कुछ अधिक बढ़ायें। इस प्रकार बढ़ाते–बढ़ाते महिने भर में दो–तीन मिनट तक ही बढ़ाना चाहिए। शीर्षासन के अभ्यासी योगी को भूखा नहीं रहना चाहिए।

नित्यमभ्यासयुक्तस्य जठराग्निविवर्धिनी।

आहारो बहुलस्तस्य सपाद्यः साधकस्य च।।

अल्पाहारो यदि भवेदग्निर्दहति तत्क्षणात्।।

अर्थात्–जो साधक शीर्षासन का अभ्यास करता है उसकी उत्तरोत्तर जठराग्नि बढ़ती चली जाती है। इसलिए खान–पान में उसको संकोच नहीं करना चाहिए और न किसी प्रकार का व्रतादि करना चाहिए। क्योंकि यदि शीर्षासन का अभ्यासी अल्पाहार होगा तो उसकी जठराग्नि स्वयं उसका दहन कर देगी। शीर्षासन करने वाले साधक को भी अपने अभ्यास काल में यह धारणा करते रहना चाहिए कि मैं अपने वीर्य को नाभिमण्डल से ऊपर की ओर आकर्षित कर रहा हूँ। नाभि–मण्डल के नीचे के भाग को ऊर्ध्वकर्षण करने से साधक अवश्य ही ऊर्ध्वरेतसता को प्राप्त कर लेता है।

यहाँ जिन क्रियाओं का संकेत किया गया है उन सबको साधक को समझकर करना चाहिए। यदि विधि पूरी तरह समझ में न आ सके तो अवश्य योग–शिक्षकों से शिक्षा प्राप्त करके ही इन क्रियाओं को करना चाहिए जिससे वे पूर्ण लाभ उठा सकें।

**** सुख और दुःख अपने आप में कुछ नहीं होते बल्कि हमारे अनुभव और दृष्टिकोण पर आधारित होते हैं। यदि हम अपना दृष्टिकोण और चिन्तन बदल दें तो कोई दुःख हमें दुःखी न कर सकेंगे।***

प्राण निरोध से चित्तवृत्ति निरोध

योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

जीव का मन स्वभावतः चंचल होता है, किंतु योग साधना के निरन्तर अभ्यास से, अध्यात्म योग से इसे एकाग्र किया जाता है और अभीष्ट लाभ प्राप्त किया जा सकता है। अध्यात्म तत्व के अनुसन्धाता को प्राण तत्व को पूर्ण रूपेण जान करके इसे स्वायत्त करना होता है। प्राण योग साधना का मूल है। मन और प्राण अध्यात्म तत्व के दो मूल तत्व हैं। ये दोनों परस्पर अनुगामी रहते हैं। साधक हठयोग की साधना से प्राण को वश में करके मन की एकाग्रता प्राप्त करता है वहीं पर राज योगी धारणा, ध्यान के मार्ग से मन को एकाग्र करके आत्म साक्षात्कार की ओर बढ़ता है। प्राण साधना के अन्तर्गत रेचक व कुम्भक के अभ्यास से प्राण को वश में करने की बात को सामने रखते हुए महर्षि पतंजलि जी एक सूत्र रखते हैं – **'प्रच्छर्दनविधारणाभ्याम् वा प्राणस्य'** अर्थात् रेचक और कुम्भक के उचित अभ्यास से प्राणों को वश में किया जाता है। प्राण के वश में हो जाने पर वृत्ति स्वतः ही एकाग्र होने लगती है। हठयोग का सिद्धान्त भी है –

यत्र मनो लीयते तत्र प्राणोऽपि लीयते

अर्थात् जहाँ पर जिस ध्येय पर मन लय होने लगता है वहाँ प्राण भी लय हो जाता है। इस प्रकार से चित्त की असंख्य वृत्तियों का निरोध करने पर ही योग का लक्ष्य प्राप्त होता है। चित्त की समस्त वृत्तियों को भगवान पतंजलिदेव ने पाँच भागों में बाँटा है। प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति ये पाँच प्रकार की चित्त की वृत्तियाँ हैं जिनका निरोध साधक का करना होता है। चित्त में उठने वाली कोई भी वृत्ति का इन पाँच प्रकार में कहीं न कहीं समावेश हो जाता है। ये सब वृत्तियाँ हेया हैं त्याज्या हैं निरोध करने योग्य हैं इसीलिए एक सूत्र के माध्यम से कहा गया है ***'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः'*** अर्थात् चित्त वृत्ति का निरोध ही योग है। चित्त वृत्ति निरोध में अनेक भूमिकायें आती हैं इसलिए सतोगुण की प्रधानता वाले सम्प्रज्ञात समाधि को भी योग माना गया है।

वृत्ति निरोध के उपायों में भस्त्रिका प्राणायाम एक ठोस उपाय है वृत्तियों को एकाग्र करने का। भस्त्रिका प्राणायाम में श्वास, प्रश्वास को जोर–जोर से भीतर, बाहर फेंका जाता है परिणामस्वरूप प्राण के संयमित हो जाने पर मन की चंचलता नष्ट हो जाती है। साधक की वृत्ति अपने ध्येय में लीन रहने लगती है। उस समय **'ध्यानम् निर्विषयम् मनः'** का सिद्धान्त चरितार्थ हो जाता है। इस अवस्था में प्राण स्पन्दन काफी कम हो जाता है। फलतः मन स्वतः ही

अन्तर्मुखी हो जाता है। जिस प्रकार से मदमस्त हाथी को अंकुश से वश में कर लिया जाता है इसी प्रकार से प्राणों के संयमन से मन को वश में किया जाता है। योग वशिष्ठ में भगवान राम गुरुदेव महर्षि वशिष्ठ से प्रश्न करते हैं, भगवन्! प्राण कैसे स्पन्दित होता है तथा इसका स्पन्दन कैसे रोका जा सकता है? आप कृपा कर विस्तार पूर्वक समझाइये। महर्षि वशिष्ठ कहते हैं 'हे राघव! जिस प्रकार से बर्फ में श्वेतता स्वाभाविक होती है, तिल में स्वाभाविक तैल रहता है इसी प्रकार से प्राण और उसके स्पन्दन को समझना चाहिए। प्राण स्पन्दन के रोकने के अनेक उपायों का वर्णन करते हुए महर्षि कहते हैं–

शास्त्र सज्जन सम्पर्क वैराग्याभ्यास योगतः।

अनास्थायां कृतास्थायां पूर्व संसार वृत्तिषु॥

अर्थात् हे राघव! सर्वप्रथम मुमुक्षु को अध्यात्म शास्त्र का सम्यक् अध्ययन करना चाहिए। पश्चात् सज्जनों का, ब्रह्मवेत्ता योगियों का संग करना चाहिए। विषयों के प्रति सदा वैराग्य भाव रखना चाहिए। ध्यान समाधि का निरन्तर अभ्यास करना चाहिए। सांसारिक वृत्तियों में व संसार व्यवहार में रुचि न रखते हुए अध्यात्म में ही रति रखनी चाहिए। प्राण स्पन्दन के निरोध का अगला उपाय बतलाते हुए महर्षि वशिष्ठ कहते हैं–

यथाभिवाञ्छितध्यानाच्चिरमेकतयोदितात् ।

एक तत्व घनाभ्यासात् प्राण स्पन्दोनिरुध्यते॥

अर्थात् एक ही वाञ्छित ध्येय में लगातार ध्यान अभ्यास से, एक ही तत्व – एक ही इष्ट में ध्यान लगाने से प्राण का स्पन्दन रुक जाता है। यहाँ पर पातंजल सूत्र का 'स तु दीर्घ काल नैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढ भूमि' अर्थात् एक ही अभ्यास को दीर्घकाल तक, निरन्तरता से, सत्कारपूर्वक, श्रद्धापूर्वक–निष्ठापूर्वक करने से योग की भूमिका दृढ होती है। प्राण स्पन्दन निग्रह के अगले उपाय को समझाते हुए पुनः महर्षि कहते हैं– गुरुपदिष्ट मार्ग से पूरक, रेचक और कुम्भक के निरन्तर अभ्यास से कुम्भक सिद्ध हो जाने पर प्राण स्पन्दन रुक जाता है। एकान्त में ध्यान योग का अभ्यास करने से प्राण स्पन्दन रुक जाता है। सुषुम्ना नाड़ी के प्रवाहित होने पर भी मन ध्येय में स्थिर हो जाता है और प्राण स्पन्दन भी रुक जाता है। पुनः प्राण स्पन्दन के अन्य उपाय का उपदेश करते हुए महर्षि कहते हैं–

ओंकारोच्चारण प्रान्त शब्द तत्त्वानुभावनात्।

सुषुप्ते संविदो जाते प्राण स्पन्दोनिरुध्यते॥

अर्थात् ओंकार के दीर्घकालिक उच्चारण से चित्तवृत्ति के बहिर्मुखी प्रवाह को रोक देने पर चित्त का सुषुप्ति में लय हो जाने पर प्राण का स्पन्दन रुक जाता है। ओंकार रूप नाद के निरन्तर अनुसन्धान से प्राण का स्पन्दन रुक जाता है। हठयोग प्रदीपिका में भी आया है–

नासनं सिद्ध सदृशम्, न कुम्भः केवलोपमः।
न खेचरी समा मुद्रा न नाद सदृशोलयः॥

अर्थात् सिद्धासन के समान कोई आसन नहीं है। केवल कुम्भक के समान कोई कुम्भक नहीं है, खेचरी के समान कोई मुद्रा नहीं है तथा नाद के समान लयता प्रदान करने वाला दूसरा साधन नहीं है। अजपा गायत्री का निरन्तर अभ्यास से भी प्राण स्पन्दन रुक जाता है। अजपा में अन्त में ओम रूप होकर व्यापक हो जाता है। नाद का मूल स्थान मूलाधार है नाद का वही उद्गम स्थल है यही परावाणी नाम से जाना जाता है। मूलाधार से प्राणों का उत्थापन करते हुए इष्टदेव के स्वरूप में लय करने से प्राण स्पन्दन रुक जाता है। हमारे गुरुदेव भगवान् अपने प्रवचनों में बतलाया करते थे कि मन्त्र का उच्चारण करते हुए इसे इष्टदेव के चरण के अँगूठे तक ले जाना चाहिए। पुनः वहाँ से उठाकर प्रश्वास से बाहर छोड़ देना चाहिए। इससे इष्ट देव के साथ तादात्म्य स्थापित होकर चित्त स्थिरता को प्राप्त कर लेता है। जिन साधकों का प्रगाढ़ ध्यान लगता है गुरु कृपा से उनका चित्त निरुद्धावस्था की ओर बढ़ जाता है।

(क्रमशः)

सूचना

सभी गुरु भक्तों को सूचित किया जाता है कि योग सिद्धाश्रम पुरानी मंडी जिला मण्डी हि.प्र. में 13 से 17 जून तक अध्यात्म योग शिविर लग रहा है। जिज्ञासु भक्त आकर आध्यात्मिक लाभ लें। साथ ही विभिन्न रोगों की निःशुल्क चिकित्सा भी की जायेगी। जय गुरुदेव की।

प्रार्थी

सम्पर्क सूत्र : 0115235478

सचिव-योगसिद्धाश्रम
पुरानी मण्डी, हि.प्र.

लक्ष्मी की स्थिरता

कृष्ण कुमार पाण्डेय, गोरखपुर

आज के वर्तमान युग का मनुष्य भोगवादी प्रवृत्ति वाला बन गया है। इसीलिए रोगी भी हो गया है। भर्तृहरि जी ने कहा 'भोगेन भुक्ता वये मेव भुक्ता।' मनुष्य भोगवादी प्रवृत्ति की पराकाष्ठा को प्राप्त करना चाहता है। इस पराकाष्ठा में लक्ष्मी की अर्थात् धन की अपरिहार्यता भी आवश्यक है। किंतु क्या धन से मनुष्य सुख प्राप्त कर पा रहा है। वास्तव में हमारी वृत्तियाँ बहिर्मुखता की ओर हो गयी हैं। जबकि सद्गुरुदेव भगवान की उपदेशात्मक वाणी साधक को बराबर सुनने को मिल रही थी कि लल्ला बहिर्मुखी वृत्तियों को अन्तर्मुखी करना ही योग का कौशल है। इन उपदेशों का प्रभाव साधक पर कितना पड़ा? यह साधक स्वयं अनुभव कर रहे होंगे। अन्तर्मुखी व्यक्ति की स्थिति सामान्य व्यक्ति से अलग होती ही है।

भगवान व्यास के प्रमुख पाँच शिष्यों में जैमिनी प्रमुख शिष्य थे। उन्होंने भी महाभारत की रचना अपने गुरुदेव के अनुसार लिखा, लेकिन वह अप्राप्य है। उसका कुछ अंश ही उपलब्ध है जो गीताप्रेस से प्रकाशित अद्भुत ग्रंथ है। इसमें महाभारत के भक्तों की गाथाएँ हैं जो निश्चय रूप से पढ़ने पर मन में योग मुखी प्रवृत्ति की ओर स्वतः उन्मुख कर देती है। कुछ ऐसा ही प्रकरण लेख का विषय बना। ...सको भी अध्ययन के समय समझा गया।

एक बार की बात है पाण्डवों में श्रेष्ठ युधिष्ठिर से भगवान व्यासदेव से प्रश्न किया कि प्रभो लक्ष्मी कैसे स्थिर हो सकती है। उसी क्रम में यह भी प्रश्न किया कि वह भगवान गोविन्द के साथ सामान्य गृहस्थों के यहाँ कैसे निवास करती है जिससे गृहस्थ सदा सुखी रहे, घर समृद्धि से भरा रहे। भगवान व्यास बड़ी प्रसन्नता से युधिष्ठिर के प्रश्नों का उत्तर देने के लिए तत्पर दिखे। वे बोले युधिष्ठिर लोक कल्याण के लिए तुमने बड़ा उत्तम प्रश्न किया है। वे गृहस्थ बड़भागी होंगे जो तुम्हारे द्वारा पूछे गये लोक कल्याणकारी प्रश्नों को अपने व्यावहारिक जीवन में लाने का प्रयास करेंगे।

व्यास देव जी बोले– युधिष्ठिर जिस गृहस्थ के घर में सत्य और पवित्रता का पालन होता है। जहाँ सभी प्राणियों के हित के लिए प्रयास किया जाता है। वहाँ लक्ष्मी स्थिर रहती है। ऐसे स्थान में भगवान अपनी परम आह्लादकारी शक्ति लक्ष्मी के साथ स्वयं विराजमान रहते हैं। प्रसंगवश परम पूज्य अँगरे जी महाराज का आगमन गोरखपुर में हुआ था। मुझे भी उनके मुखारविन्द से भागवत की कथा के श्रवण का अवसर मिला था। उसी कथा क्रम में सद्गृहस्थों के बारे में उन्होंने बताया कि देखो – ये सूर्यनारायण समस्त तिमिर का नाश करते हैं। यह कार्य उनका दैनिक का है। हम गृहस्थों को सूर्योदय से पूर्व अपनी सभी नैतिक एवं दैनिक क्रियाओं को

सम्पन्न कर लेना चाहिए। ऐसा नहीं कि सूर्योदय के पश्चात् उठकर उनके सम्मुख अपने दैनिक कार्यों को सम्पन्न करें। जो ऐसा करता है, उससे उस नारायण का अपमान होता है। यह नितान्त सत्य बात है। आज भोगवादी मनुष्य इसी कारण से ही हर प्रकार से कष्ट पा रहा है। हमारे शास्त्रों में कहा गया है – 'ब्राह्मे मुहूर्ते उत्थाय धर्म अर्थचानुचिन्तयेत'। अर्थात् ब्राह्ममुहुर्त में जगकर धर्म और अर्थ के बारे में चिन्तन करना चाहिए। शास्त्र ने धर्म के साथ अर्थ को भी जोड़ा है। ऐसा नहीं कि मात्र धर्म ही मुख्य बताया गया है, लेकिन अर्थ को बताते हुए कहा गया कि – 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मागृधः कस्वसिद्धनम्' अर्थात् किसी भी वस्तु का भोग त्याग पूर्वक होना चाहिए किसी के हिस्से का (धन) लेने का प्रयास नहीं होना चाहिए। किंतु आज परिस्थितियाँ परिवर्तित रूप से देखने को मिल रही हैं। लेकिन इसका तात्पर्य यह भी नहीं लगाना चाहिए कि सभी पुरुष एक जैसे ही हो गये हैं। धर्म का अगाध भण्डार आज भी भरा हुआ है। यह अपने अनुभव से समझने पर ही स्वाभाविक रूप से आयेगा।

आज जिस घर में माता–पिता, बन्धुबांधवों का आदर सत्कार हो रहा है पत्नी–पति परायण है। कोई क्रोधी, लालची, अत्याचारी नहीं है। वहाँ भगवान विष्णु के साथ लक्ष्मी सत्य के साथ निवास करती है। यह यथार्थ सत्य है। सत्य का अनुभव करने के लिए सत्य को ही धारण करना पड़ेगा। जैसे लोहे को लोहे से ही काटा जाता है। बारूद को बारूद से ही फोड़ा जाता है। उसी प्रकार वस्तुओं एवं व्यक्तियों का भी परिणाम स्पष्ट दृष्टिगत होता है। सद्गुरुदेव भगवान सदैव उपदेशित करते रहते थे। लल्ला व्यसनों से बचो गुरु मन्त्रों का जाप करो। घरों में प्रभु के स्वरूप का सुबह शाम आरती पूजन करो। तब अपने शेष नैतिक कार्य (नौकरी–व्यापार) आदि करो। निश्चय ही श्रेयस के स्वाभाविक रूप से भागी बनोगे। धन्य हो गुरुदेव की अमोघवाणी जो साधक ऐसे कहे गये साधन में तत्पर हैं। लक्ष्मी का वास कहा भगवान के साथ है ही इसमें सन्देह नहीं है।

व्यास भगवान ने युधिष्ठिर को संबोधित करते हुए लोक कल्याण के लिए कहा– राजन् तुझको तुम्हारे भाईयों ने जुआ रूपी व्यसन से रोका था लेकिन तुमने दुर्योधन और शकुनि के साथ जुआ खेला। जिसका परिणाम अच्छा नहीं हुआ। शकुनि ने अहंकार भाव से अट्हास करते हुए कहा भी कि मैंने जीत लिया। उसी समय कौरवों के विनाश की घोषणा तथा लक्ष्मी ने तुम्हारा साथ भी छोड़ दिया था। हम कलियुगी पुरुष कुछ ऐसे तमाम व्यसनों में लगे हुए हैं, जिसका दुष्परिणाम भोग रहे हैं। उनमें से तो कुछ हमारे पूर्व कृत परिणाम भी समया कर आ सकते हैं। भगवान व्यास ने लक्ष्मी से हीन पुरुषों के विभिन्न लक्षणों को गिनाया है, जिसके विस्तार करने की आवश्यकता नहीं है। सूत्रवत बातों को बता दिया गया है। अन्त में भगवान व्यास ने युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ सम्पन्न करने की आज्ञा दे दिया। आज विसंगति और विकृत भरे समाज में हर प्रकार के व्यक्ति मौजूद हैं। आवश्यकता इस बात की है कि आप अपने ज्ञानचक्षु को खोलें तब दूसरी जगह निगाह डालें, कबीर ने कहा कि –

बुरा जो देखन मैं चला बुरा ना मिलिया कोय।
जो दिल खोजो आपना मुझ सा बुरा ना कोय।।

आज आत्म मंथन की आवश्यकता है , युग प्रवाह अपने काल क्रम से चलता रहेगा। हमें प्रकृति के उपादान कारक चन्द्र, सूर्य, रात्रि, दिन, मौसम परिवर्तन आदि से सीखने की आवश्यकता है। हर कोई अपने भोगवादी प्रवृत्ति को त्यागकर सूर्य, चन्द्र, मौसम की तरह कार्य करने का स्वभाव बनाना चाहिए। तब हर प्रकार की स्थिरता स्वत: प्राप्त होती रहेगी अन्यथा हम दिग् भ्रमित रहेंगे तो पतन होगा। ईश्वर सदैव हमारे साथ है। वह सदैव हमारे आगे, पीछे, दाहिने, बाये, सदैव विराजमान रहकर हमारी रक्षा करता है। हमें अपने सद्गुरु के वचनों का पालन करते रहना चाहिए। भगवान व्यास ने कहा – महाभाग युधिष्ठिर लक्ष्मी तो विष्णु के साथ रहने के लिए उपयुक्त कान्ति और घर की तलाश करती हैं। जहाँ जिस घर में कलह, ईर्ष्या, द्वेष आदि नहीं है, वहाँ स्वाभाविक रूप से रहकर गृहस्थों का कल्याण करती रहती हैं। गृहस्थ शास्त्रों के इस सूत्र पर ध्यान रखें – 'न जातु कामान्हविष्यान् हविस्यान्साम्पति। अर्थात् कामनाएं समाप्त होने वाली नहीं होती है। वह अग्नि डाले गये आहुति की तरह बढ़ती रहती हैं। इसलिए लक्ष्मी की स्थिरता के लिए विभिन्न उपाय किये जा सकते हैं।

महाप्रभु पूर्ण योगेश्वर श्री रामलाल जी की महिमा

– डॉ. जे.पी. शर्मा
पौंटा साहिब
(हिमाचल प्रदेश)

हे योगीराज प्रभु रामलाल, हम तुम को शीश झुकाते हैं।
तुम सिद्धश्वर योगेश्वर हो, हम तेरा ध्यान लगाते हैं।।
तुम योग मार्ग सिखलाते हो,
पलभर में ध्यान लगाते हो।
तुम दिव्य चक्षु के दाता हो,
मुक्ति की राह दिखाते हो।। हे योगीराज....
तुम ज्ञान पुंज के दीपक हो,
अन्तर्मन ज्योति जगाते हो।
तुम जन–जन के प्राणेश्वर हो,
सकल सृष्टि अधिनायक हो।। हे योगीराज....
तुम सौर मण्डल की आभा हो,
हर चेतन के परमेश्वर हो।
ज्ञानी में ज्ञान के दाता हो,
मण्डलेश्वर प्राण विधाता हो।। हे योगीराज....
तुम सर्वेश्वर शिवशंकर हो,
हम सबके रखवाले हो।
तुम सिद्धगुणा अखिलेश्वर हो,
अमृतसर के रहने वाले हो।। हे योगीराज....

गुरुजी के बाद हमारा प्यारा गुरुधाम

25 जून श्री गुरुदेव निर्वाण दिवस

– अवनीश भटनागर, सहारनपुर

सर्वशक्तिमान विराजे यहाँ, जिनका रामलाल शुभनाम
प्रभु चन्द्रमोहन शिष्य प्यारे, करते निज गुरु का काम
सारा जीवन अर्पण किया, छोड़ भूख प्यास विश्राम
जंगल में भी कर दिया मंगल, पिला सिद्धयोग के जाम
जीवों के तीनों ताप मिटा, चमकाया मार्ग योग अध्यात्म
दुनिया भर से लोग हैं आते, श्री सिद्धगुफा सवाई धाम

हमारा आस्था बिन्दु, हमारा प्यारा गुरुधाम, श्री सिद्धगुफा सवाई धाम महान आध्यात्मिक सिद्धयोग शक्ति का केन्द्र है। जिसके सानिध्य में आते ही सिद्धयोग शक्तिमय वातावरण अपने आंचल में माता की भांति समेट लेता है और आगन्तुक भक्त के दैविक, दैहिक, भौतिक कष्टों को हर डालता है। साथ ही अन्तर्प्रेरणा प्रदान करके आध्यात्मिक उन्नति भी प्रदान करता है। जीव यदि संस्कारी है, श्रद्धावान है, समर्पित भक्त है तो श्री सद्गुरु देव महाप्रभु जी के अमोघ सिद्ध संकल्प से उसकी निरन्तर आध्यात्मिक उन्नति होती जायेगी। बाह्य जगत से नाता नाम का ही रह जायेगा, अन्तः के अमर पथ से नाता जुड़ जायेगा। वह सर्वशक्तिमान परम सद्गुरु तत्व, महाप्रभु श्री रामलाल जी एवं महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी के रूप में यहाँ विराजित रहा। भगवान विचरते रहे, जगत कल्याण करते रहे, आज भी नित्य क्रियाशील हैं, निरन्तर कृपा दृष्टि बनाये हुए हैं। उन्हें शरीरों का कोई बन्धन नहीं चाहे तो नवीन शरीर धारण करके कार्य कर दें या प्रेरणा करके कार्य करा लें। दूसरों के शरीर से भी संकेत करके कार्य करा लें। लोगों को लगता रहे कि हमने किया। किसी के शरीर को भी अधिष्ठान बनाकर कार्य करा लें। दृढ़ संकल्प से भी कार्य करा लें लोग आते रहें और कार्य करते रहें उन्हें पता ही नहीं चले कि कौन करा रहा है। इसके पीछे किसका संकल्प है। यह उनका अपना तरीका है कार्य कराने का, सद्गुरु शक्ति तो नित्य क्रियाशील है कार्य हो रहा है जिन बालकों को स्थूल रूप से या सूक्ष्म रूप से जिस तरह से भी श्री सद्गुरुदेव जी का आदेश प्राप्त है, वह ना भी करना चाहे तब भी सर्वशक्तिमान् श्री सद्गुरुदेव जी के सिद्ध संकल्प में आ जाने के कारण से श्री सद्गुरुदेव जी का कार्य करना ही पड़ेगा। इतने वो चैन से बैठने ही नहीं देंगे, जो चाहेंगे वो ही करायेंगे। आधी रात को आदेश होगा तो उसी समय करना पड़ेगा। श्री सद्गुरुदेव जी का संकल्प है कि हमारे बच्चे विद्वान बनें और जग में योग प्रचार करें। उनके विज्ञ बालकों के

द्वारा यह पुनीत कार्य बड़ी मात्रा में हो रहा है।

25 जून 1990 से श्री गुरुधाम एवं गुरुभक्तों में भारी उथापटक का काल प्रारम्भ हुआ योग्य एवं अयोग्य व्यक्तियों की खोज होने लगी। श्री सद्गुरुदेव जी की भौतिक सम्पदा के अलावा उनके आध्यात्मिक सम्पदा के वारिस की तलाश होने लगी। मौका मिलते अनेक प्यारे भक्तों को लगा कि 'वह मैं ही तो हूँ।' परन्तु थे नहीं इस बीच विवाद बढ़ने से और श्री गुरुदेव के स्थूल वियोग से साधक जन भारी व्यथित हुए। श्री गुरुदेव के स्थूल रूप के आनन्द के साथ–साथ गुरुधाम का आनन्द भी जाता रहा। साधकों ने श्री गुरुदेव जी से रो–रोकर कातर प्रार्थनायें की, सर्वशक्तिमान श्री गुरुदेव जी सब नोट करते रहे। भक्तों की आर्त पुकार पर अपने कुछ योग्यतम बालकों को जनकल्याण की जिम्मेदारियाँ सौंपी। यह सब कार्य अन्तर से चलता रहा, प्रभाव बाह्य रूप से दिखाई देता रहा, आश्रमों में भी सद्गुरुदेव जी की जै–जैकार होती रही। सब कार्य कैसे चलते रहे। किसी को विशेष ज्ञान न हो सका। विवाद भी चलते रहे, कार्य भी चलते रहे। स्मरण रहे इसके पीछे महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी की दृष्टि बराबर लगी है।

श्री सद्गुरुदेव जी के प्यारे बालकों ने अपने श्री गुरुदेव जी के जग कल्याण के कार्यों के लिए अपने को प्रस्तुत किया। श्री सद्गुरुदेव जी के महानिर्वाण का दु:ख असहनीय था परंतु फिर भी उनकी आज्ञा पालन करते हुए श्री सिद्धगुफा सवाई धाम से ब्रह्मचारी आचार्य श्री दासलाल जी महाराज ने अपने सर्वशक्तियों से विभूषित, सिद्धयोग विभूति, सद्गुरुदेव जी की योग विद्या को जग प्रचारित प्रसारित किया। संकल्प शक्ति को दृढ़ करके ममतामयि परम आदरणीया बहन जी सुश्री उमा शक्ति जी ने जग में अपने सद्गुरुदेव जी की आज्ञा का अनुसरण करके योग का डंका बजा दिया। श्रद्धेय आचार्य श्री चन्द्रहास जी सिद्धयोग दरबार के अन्तरंग को जिज्ञासु साधकों को प्रदान कर रहे हैं। जिससे इस मार्ग में नित नये साधक प्रवेश पाकर आत्मलाभ कर रहे हैं। बामनी योग आश्रम अलीगढ़ के योग आचार्य श्री बृजमोहन जी ब्रह्मचारी योग साधना का प्रचार भली प्रकार कर रहे हैं। ब्रह्मचारी श्री सतीश जी बुलन्दशहर योग आश्रम में योग प्रचार हेतु नित्य क्रियाशील हैं। महात्मा अमीरानन्दजी, श्री हरिभक्त चैतन्य जी एवं श्री टाट्याबा जी योग कार्य करते हुए ब्रह्मलीन हो गये, इनके प्रयास भी अति सराहनीय रहे।

गृहस्थ वेष में भी भारी जागृति देखने को मिली। इसके अन्तर्गत अनेक स्थानों के गुरुभक्त निरन्तर योग प्रचार कार्य में लगे हैं। इसमें कानपुर, सहारनपुर, झाँसी, इलाहाबाद, कुरुक्षेत्र, गंगापुर सिटी, जयपुर, कांगड़ा, मंडी हिमाचल, लाडवा, घरोण्डा, पानीपत, बनारस, अमृतसर, दिल्ली आदि संक्षेप में ही के 'योग जिज्ञासु भक्त' बहुत अच्छा कार्य कर रहे हैं। इनके प्रयास अति सराहनीय हैं। अपने श्री गुरुदेव के कार्य को ये सब महान आत्मायें कर पा रही हैं। इसलिए सम्मान की पात्र है ही हम इन सभी महात्माओं का करबद्ध हार्दिक अभिनन्दन

करते हैं।

श्री सद्गुरुदेव जी के परिनिर्वाण के पश्चात् उनकी धरोहर को सम्भालना, उसकी रक्षा करना, गुरुदेव की स्मृति को सदा जीवंत रखना, उनकी आज्ञा और विद्या का सदा पालन और प्रसार करना, उनके श्री चरण रज से धन्यधाम को हार्दिक श्रद्धा समर्पित कर तन, मन, धन से सेवारत रह, नित्य नई उन्नति प्रदान करके जगत में चमका देना जो सामान्य जनों के लिए प्रेरणादायी हो और आत्मशान्ति और आत्म उन्नति का कारण बनें। श्री सद्गुरुदेव जी से तो हमने सारी आशायें लगायी रखी, अपनी हर मनचाही कराते रहे उनसे, क्या विचारा कभी कि उनकी भी तो कुछ आशायें रही होंगी हमसे। उनकी आशाओं पर कौन खरा उतरेगा, कभी विचार किया, कि श्री गुरुदेव हमारे हैं तो हमें भी उनका होना ही चाहिए। श्री सद्गुरुदेव जी ने अपना सब कुछ छोड़कर अपने श्री गुरुदेव जी की आज्ञा में रह कर भारी तप किये, अपने को सब कुछ बनाया, श्री गुरु आज्ञा के कारण ही अपने एकान्तवास और दिव्य शान्ति को छोड़कर शिष्यों के जंजाल में फँसे, उन्हें शिष्यों ने क्या दिया। अनास्था, विवाद, कोर्ट कचहरी, बदनामी, उनके पावन नाम और पावन धाम को लेकर मुजरिमों की तरह न्यायालय में आवाज लगे यह असहनीय है। श्री गुरुदेव जी के विग्रह के सामने ही उनकी संपदा की चोरी, क्या हमने उन्हें वो मान लिया है जो देख नहीं सकते। क्या श्री गुरुदेव जी ऐसे कुछ लोगों के हिस्से में ही आये हैं जो उनको अपने स्वार्थ के हिसाब से ही प्रयोग करते रहें। श्री गुरुदेव जी तो उन सबके हैं। जिनका भला उन्होंने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी भी रूप में किया है और अब भी कर रहे हैं और सुपात्रों का करते रहेंगे। अगर इन लाखों भक्तों के मन दुखी हुए और इनके मन में आक्रोश हुआ तो क्या होगा। विचार करो जीवन बहुत छोटा है, बहुत कुछ बीत चुका है, करना बहुत कुछ है, बिना अच्छा करे ही यह जीवन चला गया तो बुरे कर्मों की चक्की पीस कर रख देगी हमें जन्म जन्मान्तरों तक। श्री गुरुदेव जी के प्यारे भक्तों आपके भी संस्कार उज्जवल रहे, जो आपको श्री करुणामय गुरुदेव जी की पावन शरण, आशीर्वाद मिले, उनका पावन धाम मिला। परन्तु हम पात्र बन नहीं सके, चल नहीं सके, उनके सत्य मार्ग पर बन नहीं सके वह सब जो वह हमें बनाना चाहते थे। हमने मनमुख होकर काम किया गुरुमुख होकर नहीं, यही कमी रह गई हममें और बावजूद इसके दावा उत्तराधिकारी होने का। स्वयं मेहनत करके खायें और गुरुधाम की खूब सेवा करें, गुरुधाम को न खायें। हमारा उद्देश्य होना ही चाहिए 'श्री गुरुदेव, गुरुधाम व गुरुसेवा।'

श्री गुरुदेव जी के प्यारे भक्तों जो तुम्हारे श्री प्रभुजी का प्यारा है, वह तुम्हारा भी प्यारा होना चाहिए। श्री गुरुदेव जी ने जितना तुम्हें दे दिया है उससे अधिक तुम्हें कोई और नहीं दे सकता। इसलिए दर-दर मारे-मारे मत घूमों तुम्हारे गुरुदेव सर्वशक्तिमान हैं। कट्टर भक्त बनो श्री प्रभु जी के उनके मार्ग से कभी मत हटो, उनके सिद्धान्तों का पालन करो। तुम्हारे अन्दर चमक ही चमक भर देंगे। मांगने वाला नहीं देने वाला बना देंगे ऐसे हैं तुम्हारे गुरुदेव तुम जहाँ अटक और भटक जाते हो क्या रखा है उन सबमें विश्वास नहीं तो खोज कर स्वयं देख

ली 'गांठ खोलत जानत नहीं इस कारण भये कंगाल।' प्यारे गुरुभक्तों श्री गुरुदेव जी हम सबसे पहले इस पावन धाम गुरु का बाग सवाई पधारे अपना जीवन समर्पित किया अपने श्री गुरु के इस पावन लीलाधाम को, हानि अपमान सहे, ओम प्रकाश कुलश्रेष्ठ की गोली खायी, प्यारे भक्त का कोंच झेला, जीवन लगाया, अपनी एकान्तिक शान्ति खोई किसके लिए, इस प्यारे सिद्धगुफा धाम के लिए; जो भी दैविक, दैहिक, भौतिक संपदा जोड़ी वह सबके उनके भारी और अपने परिश्रम से थी। शिष्य श्री गुरुदेव जी की संपदा के अधिकारी तो हो सकते है, पर जब भी न जब श्री गुरुदेव स्वयं यह संपदा दें और नहीं देते तो इसका मतलब कि अधिकारी नहीं है। तो काहे को छीना झपटी का शिकार होकर श्री गुरुदेव जी के आश्रम रुपी पावन शरीर में जख्म करने के काम में भागीदार हो जाते हैं। गुरुधाम भी गुरुदेव का शरीर ही है। इसके दो रूप है एक स्थूल, एक सूक्ष्म जैसे हम स्थूल शरीर के चरण छू प्रणाम करते है, वैसे ही गुरुधाम के द्वार को प्रणाम करते है, जैसे श्री गुरुदेव को छूकर प्रसन्न होते है, वैसे ही उनके विग्रह, उनकी वस्तुएँ, उनकी गुफा को छूकर प्रसन्न होते है, जैसे श्री गुरुदेव की चिन्मयि शक्ति से लाभान्वित होते थे। वैसे ही गुरुधाम के दिव्य वातावरण से निहाल होते हैं। चले आते है सैकड़ों मुसीबत उठाकर भी उनके एक आन्तरिक बुलावे पर ''जिन भक्तों पर खास कृपा हो गुरुवर की उनको ही सन्देशा जाता है दरबार बुलाये जाते हैं।''

तुम्हारे श्री गुरुदेव जी तो माखन की तरह कोमल है सब सह लेते है, उफ तक नहीं करते क्योंकि 'सन्त हृदय नवनीत समाना' परन्तु जो उनको प्यारे है जिनका नाम, काल नचाने वाले महाप्रभु रामलाल है। महाप्रभु श्री रामलाल जी को भी बहुत प्यारे हैं 'चन्द्रमोहन जी', उन महाप्रभु से अवश्य डरो, भय करो, वह देते है तो छप्पड़ फाड़ कर, लेते है तो थप्पड़ मार कर प्राण भी खींच लेते हैं। सिद्धगुफा धाम उनका ही है। वह स्वयं कालाग्नि रूद्र है। उनके सामने त्रिलोक में किसी की सामर्थ्य नहीं। उनकी नजरों से यदि कोई गिर गया तो उसका कहीं कल्याण नहीं, उसे कहीं ठौर नहीं – 'हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहि ठौर।'

ऐसे गुरुवर है तुम्हारे जिनका सानी नहीं कोई त्रिलोक में।
प्रभु चन्द्रमोहन का हो एक छत्रराज इस पावन अवनि मंडल में।।

लगभग एक वर्ष पूर्व की बात है प्यारी पत्रिका सिद्धयोग के लिए रात्रि तीन बजे महाप्रभु श्री चन्द्रमोहन जी कुछ लिखने की प्रेरणा कर रहे थे। इतने में स्वरूप से बोल उठे तेरा वश चले तो घर–घर में हमारा स्वरूप लगवा दे मैंने दीन वचन में कहा नहीं परमपिता पूरे संसार में लगवा दूं, पर यह संसार स्वार्थी है। मैं तो केवल आपके संस्कारियों के पात्रों को साफ कर चमकाने में परिश्रम कर रहा हूँ। आपको उचित लगे तो पधारना इनके जीवन में क्योंकि लोगों की मानसिकता हो गई है' यावद जीवम् सुखम्, जीवेत् ऋणम् कृत्वा घृतम् पिवेत।'

कर्म-अकर्म-विकर्म तथा कर्मसन्यास का स्वरूप क्या है?

रघुवीर चन्द ठाकुर, उत्तराखण्ड

कर्म क्या है? अकर्म क्या है? विकर्म क्या है तथा कर्म सन्यास क्या है? इसका निर्णय करने में बुद्धिमान पुरुष भी धोखा खा जाते हैं क्योंकि–

गहना कर्मणो गतिः

अर्थात् कर्म की गति गहन है। भगवान श्री कृष्ण ने भी अध्याय (4) के 17 श्लोक के माध्यम से बताया है। अतः कर्म, अकर्म, विकर्म तथा कर्म सन्यास का सार इस प्रकार है।

1. कर्म – जिस परिवर्तन रूप क्रिया में कम से कम 3 तत्व विद्यमान रहते हैं कामना, ममता तथा तादाम्य (सम्बन्ध) उसे कर्म कहते हैं। कर्म का सही माने अर्थ है कर्तव्य कर्म, स्वभाव प्राप्त कर्म, स्वधर्मा चरणा। यही कर्तव्य कर्म भगवान के अर्पण कर देने से कर्म पूजा बन जाएगा यज्ञ बन जाएगा और कर्म बन्धन से मुक्त कर देगा। साधारण रूप से मन वाणी एवं शारीरिक रूप से किया गया कार्य कर्म है। जिसमें व्यक्ति, श्रुति, स्मृति प्रतिपादित विधिवत कर्म का पालन करें किंतु ईश्वर भक्ति न करे। विधिवत कर्म का फल स्वर्ग है यह भी बन्धन युक्त है क्योंकि ऐसा करके 'क्षीणे पुण्ये मृत्युलोकं, विशन्ति।'

2. अकर्म – जिस क्रिया में फल जनकता नहीं रहती है तथा तादाम्य टूट जाता है उसको अकर्म कहते हैं। यही कर्म में अकर्म भी है। जो भी कर्म भगवान श्री कृष्ण के द्वारा होते हैं, वे सब ममता आश्राक्ति फलेच्छा तथा कर्तापन के बिना ही लोक हितार्थ होते रहते हैं उनका उन कर्मों में कोई तादाम्य नहीं रहता ये समस्त कर्म दिव्य हैं तब वे कर्म उनको लिप्त करते हैं, मन वाणी शरीर से किये जाने वाली क्रियाओं का स्वरूप से त्याग देना ही अकर्म नहीं कहलाता, इसमें जो विशेष बात है वह भाव की है। कर्म करते हुए कर्म में कर्तापन का अभाव ही अकर्म है परंतु निठल्ले बैठे रहना अकर्म नहीं है, यह तामसिक कर्म है क्योंकि निठल्लापन आलस की देन है और आलसीपन तामसी वृत्ति है।

मन से ईश्वर अनुराग शरीर से शास्त्रोक्त कर्म होने से ही अकर्म कहलाता है और इसी को कर्मयोग भी कहते हैं।

3. विकर्म– सभी शास्त्र विरुद्ध पाप कर्म विकर्म कहलाते हैं। साधारण रूप में झूठ, कपट, चोरी, व्यभिचार, हिंसा आदि सब विकर्म हैं पाप कर्म बन्धन युक्त है तथा पुण्य कर्म बन्धन मुक्त है 'वर्णाश्रम' के अनुसार ब्राह्मणों, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के लिए निश्चित कर्म इस

प्रकार है–

ब्राह्मण के लिए :– अन्तःकरण का निग्रह करना इन्द्रिय दमन, धर्म पालन के लिए कष्ट सहन करना, बाहर भीतर से शुद्ध रहना, क्षमा करना, मन इन्द्रिय शरीर को सरल रखना, वेद शास्त्र ईश्वर परलोक में श्रद्धा रखना, वेद शास्त्रों का अध्ययन, अध्यापन करना तथा परमात्मा तत्व अनुभव करना।

क्षत्रिय के लिए :– शूर वीरता, तेज, धैर्य चतुरता और युद्ध में न भागना, दान देना, स्वामी भाव।

वैश्यों के लिए :– खेती गोपालन और क्रय–विक्रय रूप सत्य व्यवहार।

शूद्रों के लिए :– सब वर्णों की सेवा स्वाभाविक कर्म है उपरोक्त कर्म गीता के अ. 18 के श्लोक 51, 52 तथा 53 के अनुसार है। परन्तु अपने वंश धर्म के अनुसार जो नहीं करते विकर्म बन जाते हैं।

क्या कर्म अकर्म–विकर्म एक दूसरे में परिवर्तित हो जाते हैं?

जी हाँ बड़ी आसानी से केवल भावना का खेल है।

उदाहरण :– एक के लिए कर्म दूसरे के लिए अकर्म, तीन घनिष्ठ मित्र थे जिसमें एक की मृत्यु हो गई अन्य दोनों मित्र स्वर्गीय मित्र की पत्नी के पास सांत्वना देने के लिए पहुँचते हैं और कहते हैं, भाभी जी आप चिन्ता मत करना हम लोग तो हैं, दोनों सहायता में लग जाते हैं। एक तो शुद्धमन से सहायता करना है दूसरे के मन में पाप होता है और वह भी सहायता करता है दोनों समान रूप से सहायता करते हैं। परन्तु एक का कर्म मुक्त करने वाला है तो दूसरे का बन्धन वाला, यहाँ बन्धन का अर्थ है भोग योनियों में भटकना। कर्म दोनों एक ही है परन्तु भाव भिन्न होने के कारण पहला तो कर्म है दूसरा विकर्म, इसी प्रकार खून की आवश्यकता पड़ने वाले रोगी को खून दे या न दूं की उधेड़बुन में एक व्यक्ति देर कर देता है परन्तु बाद में खून दे ही देता है तब तक रोगी की मृत्यु हो चुकी होती है तब यह कर्म अकर्म बन जाता है।

दूसरा उदाहरण :– एक शिक्षक का कर्तव्य कर्म सच्चाई एवं निष्ठा से शिक्षा प्रदान करना है। परन्तु यदि वह घूस लेकर विद्यार्थी को पर्चा आउट करके उत्तीर्ण करना विकर्म है। कक्षा में गपशप लगाकर या अन्य प्रकार से समय नष्ट करना विकर्म है। परन्तु इसी काम को वह सफलता पूर्वक 'योग कर्म सु कौशलम' की युक्ति से वह सिद्धि के शिखर में पहुँच जाएगा। जबकि वह अपने शिक्षण कार्य को ईश्वर अर्पित करता रहे और ईश्वर का ही कार्य समझे ईश्वर के ही बाल गोपालों को शिक्षा देना सौभाग्य समझे तथा कर्तापन के अभिमान को पास न भटकने दे तो वह योग में ही रमण रहेगा, समस्त कर्मों को करने वाला योगी ही होगा एक साधारण शिक्षक नहीं।

इसी प्रकार जिस पद में जो हो, जिस वर्ण में जो हो, जिस कार्य में जो हो कर्म के गहन

ज्ञान को समझ करके ईश्वर में अर्पित करे तो यह योग में परिवर्तित हो जाएगा।

(4) **कर्म सन्यास** – कर्म सन्यास उसे कहते है जिसमें ईश्वर भक्ति कर्मयोगी की तरह हो परंतु वेदादि प्रतिपादित कर्म नहीं इसमें ईश्वर प्राप्ति हो होगी, दुख निवृत्ति होगी, परमा नन्द की प्राप्ति भी होगी परंतु कर्म न करने से फल भोगने और न भोगने का प्रश्न नहीं उठता। कर्मयोगी की भाँति कर्मसन्यासी भी वन्दनीय है। भगवान श्री कृष्ण अर्जुन को समझाते है कि कौन सा मार्ग इसके लिए अधिक हितकर होगा–

सन्यास: कर्मयोगश्च नि: श्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसन्या सात्कर्मयोगोविशिष्यते।।

अर्थात अर्जुन कर्मयोगी एवं कर्म सन्यासी दोनों ही कृतार्थ होते हैं किंतु फिर भी कर्मयोग का मार्ग कर्मसन्यास से श्रेष्ठ है क्योंकि उनको अनुसरण करने वाले अंतरंग नकल न करके बहिरंग नकल करेंगे। जिसमें ईश्वर भक्ति अंतरंग न होने के कारण कर्मयोगी का अनुसरण करने वाला, कर्मी तो बन जायेगा और अंतरंग ईश्वर भक्ति से वंचित रह जायेगा। कर्म सन्यासी का अनुसरण करने वाला कर्म करने का अनुसरण कर लेगा। तथा अंतरंग ईश्वर भक्ति का अनुसरण भी नहीं कर पायेगा इसलिए परिणाम में ईश्वर भक्ति एवं कर्म दोनों से वंचित रहने के कारण कर्मसन्यासी का विकर्मी बनने की सम्भावना अधिक है, अतः कर्मयोगी श्रेष्ठ है। इसलिए अर्जुन के लिए यह उपदेश उपयुक्त है– 'तस्माद्योगी भवार्जुन'।

सब कुछ भगवान का समझकर सिद्धि–असिद्धि मे समत्वभाव रखते हुए आसक्ति और फल की इच्छा का त्याग कर भगवदाज्ञानुसार केवल भगवान के लिए ही सब कर्मो का आचरण करना तथा श्रद्धापूर्वक, भक्तिपूर्वक, मन वाणी और शरीर से सब प्रकार भगवान के शरण होकर नाम, गुण और प्रभाव सहित उनके स्वरूप का निरन्तर चिन्तन करना, यह कर्मयोग का साधन है।

जिस मनुष्य में स्वयं का विवेक, चेतना एवं बोध नहीं है, उसके लिये शास्त्र क्या कर सकता है। आँखों से हीन अर्थात् अन्धे मनुष्य के लिए दर्पण बहरे के लिए राग जिस तरह व्यर्थ है उसी तरह अविवेकी और अश्रद्धालु के लिए शास्त्र भी किसी काम का नहीं होता।

–स्वामी विवेकानन्द

गुरु दोहावली

दिनेश शर्मा, जरेरा (फरीदाबाद)

प्रभु सूरज गुरु चांद हैं, योग के इस आकाश।
मेरे दोऊ प्रभु दमकते, निश, दिन, करें प्रकाश।।1।।

नाम जपत कटि जात हैं, कोटि जनम अपराध।
ऐसा गुरु का नाम है, मूरख क्यों सकुचात।।2।।

गिनी हुई ये सांस हैं, विरथा मतो गवांय।
गुरु नाम का जाप कर, नहीं तो फिर पछिताय।।3।।

मन मंदिर कैसे बने, अंदर मैल दुराऊँ।
गुरु अंदर ऐसे बसो, हाथि चरण बलिजाऊँ।।4।।

योग-योग ही, योग है, योग सकल आधार।
योग जोड़ता सभी से, क्या, गुरु, हरि, पितुमात।।5।।

चरण शरण मैं हूं पड़ा, होकर अधम, अधीर।
नीच कीच मैं हूं फंसा, काढ़ों हे गुरु वीर।।6।।

नहीं जाना मैं योग को, नहीं जाना मैं ज्ञान।
नहीं सत संगति कर सका, कैसे हो कल्यान।।7।।

जीवन व्यर्थ रहा मेरा, नहीं पाया कुछ ज्ञान।
नहीं दर्शन खुद के किए, नहीं गाया गुरु गान।।8।।

संतो की सेवा करो, आदि काल से रीत।
गर चाहत हरि दरश को, कर सद्गुरु से प्रीत।।9।।

सद्गुरु की सेवा करो, चरण कमल चितलाय।
कागा से हंसा करें, हरि से देहि मिलाय।।10।।

अष्टाङ्ग योग

प्रो. ऋषिराम शर्मा, लखनऊ

हमारे शास्त्रों के अनुसार मन में भावना का उदय गुणों के द्वारा होता है, संकल्प–विकल्प भी स्वभावगत गुणों का ही परिणाम होता है। जैसी भावना या संकल्प चित्त में उदय होता है, बुद्धि में उसी का ज्ञान होता है। जब मन संकल्परहित होकर बुद्धि में लीन होता है, तभी संसार का भी नाश हो जाता है तथा अद्वैतावस्था वाले आत्मतत्व का सूक्ष्म बुद्धि में साक्षात्कार होता है। संसार में तथा अन्य लोकों में जीवों का आगमन तथा सुख–दु:ख के कर्मभोग भी इसी गुणात्मक भावना पर ही आधारित हैं। शास्त्र इसकी पुष्टि करता है कि

तादृक् भवति विज्ञप्ति यादृशी खलु भावना।
क्षये तस्या: परं ब्रह्म स्वयमेव प्रकाशते।।
आत्मसत्यानुबोधेन न संकल्पयते यदा।
अमन: तां तदा याति ग्राह्याभावे तदग्रहम्।।
यावत् हेतुफलावेश: तावत् हेतुफलोद्भव:।
क्षीणे हेतुफलावेशे संसारं न प्रपद्यते।।
त्यक्तसर्वविकल्पश्च स्वात्मस्थं निश्चलं मन:।
कृत्वा शान्तो भवेत् योगी दग्धेन्धन: इवानल:।।
यच्चित: तेनैष: प्राणमायाति प्राण: तेजसा युक्त:।
सहात्मना यथासंकल्पितं लोकं नयति।।

अर्थात् देहधारी जीवात्मा मन की भावना के अनुसार व्यवहार करती है, क्योंकि भावना के अनुकूल संकल्प होते हैं और संकल्प से कर्म करने की प्रेरणा मिलती है। कर्म से फल की वासना का बीज संस्कार के रूप में चित्त में चार अवस्थाओं में विद्यमान रहते हैं, वह हैं सुप्तावस्था, तनु–अवस्था, विच्छिन्नावस्था तथा उदारावस्था। माया के जो मलावरण बनाने वाले पंचक्लेश हैं उनसे कर्माशय का निर्माण होता रहता है। दीर्घकालीन तप, साधना, स्वाध्याय तथा भक्तिपूर्वक ईश्वरप्रणिधान का जब धैर्यपूर्वक निरन्तर अनन्यभक्ति के साथ अनुष्ठान किया जाता है तब गुरुकृपा से मन में अमनीभाव का उदय होता है, मन में भावना का सबीज नाश हो जाता है तब विशुद्ध अन्त:करण में परमात्मा का प्रकाश सर्वत: ओतप्रोत हो जाता है। इस आत्मसाक्षात्कार के बाद अनादिकाल से माया के आवरण में सोया हुआ जीव जाग जाता है और उसे अपने जन्म, स्वप्न, निद्रा तथा अज्ञान से पूर्ण मुक्तावस्था प्राप्त हो जाती है। यही

स्वरूपावस्था है, यही सिद्धावस्था है। यह संसार तभी तक सत्य दिखाई देता है जब तक कार्य–कारण सम्बन्ध बीजांकुरन्याय के अनुसार चलता है यानि बीज से अंकुर पेड़ का रूप धारण करता है तथा पेड़ से बीज उत्पन्न होता है और इस तरह कारण ही कार्य का रूप धारण करता है तथा कार्य ही कारण का रूप ले लेता है। इसी की पुनरावृत्ति ही संसार है। कर्मरूपी कारण का कर्मफल ही संसार है। कर्म तथा कर्मफल के अभाव में संसार का भी स्वतः अभाव हो जाता है। यद्यपि व्यवहार में कार्य में कारण गुप्त रहता है अथवा ऐसा कहा जा सकता है कि कार्य कारण पर कल्पित होता है किंतु कारण में कार्य विद्यमान नहीं रहता। उदाहरण के रूप में कौटन शर्ट में रूई कारण है तथा शर्ट कार्य है। शर्ट में रूई गुप्त रूप में विद्यमान है किंतु रूई में शर्ट विद्यमान नहीं है। इसी प्रकार घट में मिट्टी विद्यमान है किंतु मिट्टी में घट विद्यमान नहीं है। परमात्मा की माया आश्चर्यपूर्ण है जिसमें कारण से कार्य उत्पन्न होता है तथा कार्य से कारण की उत्पत्ति होती देखी गयी है जैसे कि बीज से पेड़ उत्पन्न होता है तथा पेड़ से बीज उत्पन्न होता है। पिता से पुत्र की उत्पत्ति तथा पुत्र से पिता हो जाता है क्योंकि पुत्र ही पिता बनता है। यह कार्य–कारण की श्रृंखला अनादि तथा अनन्त है तथा इसका संचालन कैसे हो रहा है यह भी आश्चर्यजनक तथा अज्ञेय है। जगदीश्वर श्रीकृष्ण ने भी यही संकेत दिया है कि–

''न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर्न च संप्रतिष्ठा''

अर्थात् मेरी योगमाया के स्वरूप को कोई नहीं जान सकता, क्योंकि इसका न कोई आदि है और न अन्त है तथा इसका अधिष्ठान भी अज्ञेय है। यह योगमाया ही परमात्मा की महिमा है जोकि परमात्मा की ही तरह अनन्त विद्यामूलक तथा अविद्यामूलक भावों से आच्छादित है। वेद प्रमाण है कि जब तत्वज्ञानियों द्वारा इस संसार को जानने की इच्छा हुई तब,

ते ध्यानयोगानुगता: अपश्यन्
देवात्मशक्तिं स्वगुणै: निगूढाम्।
स कारणानि निखिलानि तानि
कालात्मयुक्तानि अधितिष्ठति एक:।।

अर्थात् संकल्प के अनुसार ध्यानयोग की साधना के द्वारा उन्होंने परमात्मा की माया को देखा जो अपने ही तीन गुणों सत, रज तथा तम तथा उनसे उत्पन्न अनन्त प्राणादि भावों से परिछिन्न थी। वही देवशक्ति संसार – रचना के कारणभूत अनन्त कारण–कार्यों की श्रृंखला की भी मूलकारण है तथा यही एक परमात्मा की योगमाया कालतत्त्व तथा प्राणियों की अन्तरात्माओं की भी अधिष्ठात्री देवी जगदम्बा है, जगदीश्वरी है तथा त्रियात्मिका महाशक्ति है। यही भुवनेश्वरी संसार की रचना, भरण–पोषण तथा संहार का

कार्य सम्पादन करती है। इस कार्य–सम्पादन का कार्यक्षेत्र अन्तःकरण है जिसमें चित्त के संकल्प–विकल्पों के रूप में संसार का बीज रहता है। जैसे ही चित्त संकल्पों तथा विकल्पों के मलविकारों से मुक्त होकर निश्चलभाव में आत्मभाव में विलीन हो जाता है, वैसे ही योगी उसी प्रकार शान्त हो जाता है जैसे कि ईंधन के जल जाने पर अग्नि शान्त हो जाती है। अन्यथा संकल्प–विकल्पों के संस्कारों से युक्त चित्त प्राण में प्रवेश करके आत्मतेज से युक्त प्राण के साथ संकल्प के अनुसार ही लोकों में आवागमन का हेतु होता है। यही हमारे संसार का अटल सत्य है। वस्तुतः हमारा यह जागृत संसार तथा स्वप्न का संसार दोनों ही कल्पित हैं, क्योंकि अविद्याजनित चित्त से ही दोनों का निर्माण होता है। शास्त्र प्रमाण है कि –

अव्यक्ताः एव ये अन्तस्तु स्फुटाः एव च ये बहिः।
कल्पिताः एव ते सर्वे विशेषस्तु इन्द्रियान्तरे।।

अर्थात् अन्तश्चित्त के द्वारा निर्मित स्वप्न का संसार अव्यक्त होता है, क्योंकि हमारी जागृत बुद्धि को इसके कारण तथा परिणाम का ज्ञान नहीं होता परंतु जागृत जगत बहिर्मुखी इन्द्रियों तथा मन से जाना जाता है तथा बुद्धि उसे सत्य समझती है। यथार्थ में दोनों का अस्तित्व चित्त के कारण है तभी तो सुषुप्ति में दोनों संसार अस्तित्वहीन हो जाते हैं। जो दोनों में भेद है वह इन्द्रियों के कारण है, क्योंकि स्वप्न के संसार का ज्ञान सूक्ष्म इन्द्रियों के द्वारा होता है तथा जागृत संसार का ज्ञान बहिर्मुखी स्थूल इन्द्रियों के द्वारा होता है। इन्द्रियाँ चित्त की शक्तियाँ हैं। अतः दोनों संसार चित्त का ही स्फुरणमात्र है। 'वृत्तिसारूप्यमितरत्र' के अनुसार सम्पूर्ण जड़–चेतन जगत चित्तवृत्तियों का स्थूल रूपान्तर है।

यह समझना महत्वपूर्ण है कि गुण तथा कर्म का अन्तःकरण पर प्रभाव ही माया का मलावरण तैयार करते हैं और यही आवरण है जिसके कारण जीव को अपना स्वरूपज्ञान नहीं होता है। हमारे शास्त्र इसकी पुष्टि करते हैं कि –

मलिनो हि यथादर्शो रूपालोकस्य न क्षमः।
तथा अविपक्वकरणः आत्मज्ञानस्य न क्षमः।।

अर्थात् जिस प्रकार मल से मलिन दर्पण रूपदर्शन कराने में समर्थ नहीं होता उसी प्रकार माया के मलविकारों से अशुद्ध अन्तःकरण आत्मसाक्षात्कार कराने में समर्थ नहीं होता। हमारा बुद्धिज्ञान आत्मा को शरीर की सीमा में सीमित देखता है तथा भिन्न–भिन्नआत्माओं को बताता है। परंतु शास्त्रों के अनुसार यह मिथ्या ज्ञान है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण का कथन है कि –

''अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्''

अर्थात् सभी प्राणियों में एक ही अविभक्त आत्मा भ्रान्तिज्ञान से विभक्त जैसी प्रतीत होती है। उपनिषद का भी यही कथन है कि –

एकश्च सूर्यो बहुधा जलधारेषु दृश्यते।
आभाति परमात्मापि सर्वोपाधिषु संस्थित:।।

अर्थात् जैसे एक ही सूर्य अनेक जलधाराओं में अनेक रूप में दिखाई देता है वैसे ही सभी योनियों में एक ही परमात्मा का प्रकाश व्याप्त है। भिन्न–भिन्न शरीरों में तथा जड़–चेतन पदार्थों में एक ही परमात्मा अनेक रूपों में प्रकाशित है, किंतु भ्रान्तिज्ञान के कारण केवल जगतरूप दिखाई देता है। इस सत्य का हमारे वेदशास्त्रों ने संकेत दिया है कि

आकाशमेकं हि यथा घटादिषु पृथग्भवेत।
तथात्मा एको हि अनेकश्च जलधारेषु इवांशुमान्।।
यथा एकस्मिन् घटाकाशे रजोधूमादिभि:युते।
नान्ये मलिना यान्ति दूरस्था: कुत्रचिद क्वचित्।।
तथा द्वन्दै: अनेकैस्तु जीवे च मलनीकृते।
एकस्मिन् नापरे जीवा: मलिना: सन्ति कुत्रचित्।।
यद् एतद् दृश्यते मूर्त एतद् ज्ञानात्मन: तव।
भ्रान्तिज्ञानेन पश्यन्ति जगत्रूपं अयोगिन:।।

अर्थात् हमारी बुद्धि में अज्ञान के कारण अनेक भ्रान्तियाँ है। हम भिन्न–भिन्न शरीरों में भिन्न–भिन्न आत्मा देखते है। यह भिन्नता उसी तरह है जिस तरह भिन्न–भिन्न घटों में एक ही आकाश भिन्न–भिन्न घटाकाशों के रूप में अनेक आकारों में दीखता है अथवा एक ही सूर्य भिन्न–भिन्न प्रकार की जलधाराओं में भिन्न–भिन्न आकारों तथा गतियों में दीखता है। हमें अनेक शरीरों में तथा योनियों में जो जीवात्मायें दिखाई देती है वह अलग–अलग प्रकार के द्वन्दरूपी विकारों से दूषित होती है, भिन्न–भिन्न पाप–पुण्य के कर्मों में व्यस्त दिखाई देती है किंतु यह सब भ्रान्तिज्ञान है, क्योंकि जैसे आकाश कभी भी घटाकाशों की धूल तथा धूमादि मलिनता से प्रभावित नहीं होता वैसे ही निर्विकार एक ही आत्मा जीवात्माओं के विकारों से प्रभावित नहीं होती तथा उसकी अनेकता भी प्रतिबिम्बों की भाँति मिथ्या है। यह मूर्तमान संसार अज्ञानियों तथा अयोगियों को ही अविद्या के आवरण में सत्य दिखाई दे रहा है, किंतु योगियों को सम्पूर्ण जगत अपने ही सर्वव्यापी परमात्मा के स्वरूप में उसकी महिमा के रूप में दीखता है।

मेरे गुरुदेव योग की सर्वोच्च सत्ता (भाग द्वितीय)

प्रेषक : केशव उपाध्याय

योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्धगुफा सवाई से सम्बन्धित हमारे आदरणीय गुरु भाई–बहन तथा श्री सिद्धयोग पत्रिका के नियमित, अध्यात्म जिज्ञासु साधक समुदाय श्री सिद्धयोग पत्रिका के पिछले अंकों में प्रकाशित श्री गुरुदेव योग की सर्वोच्च सत्ता नामक शीर्षक कृपा प्रसंग पढ़कर अवश्य ही लाभान्वित हुए होंगे, ऐसी आशा है। उस प्रसंग में हमारे आदरणीय गुरुभाई श्री नवीन कुलश्रेष्ठ को जिन्होंने बी.ए. की परीक्षा पास की थी, उसकी नौकरी लगाई, उनकी विपत्ति की बेला में अपने परम योग्य शिष्य (झील के योगीराज) द्वारा उनकी प्राण रक्षा कराई एवं मान सम्मान बढ़ाया, अवश्य ही अवगत हो गये होंगे एवं उनकी श्रद्धा में भी श्री गुरुदेव भगवान की अहैतुकी कृपा से अवश्य ही वृद्धि हुई होगी। ऐसी आशा एवं विश्वास है। उसी कृपा प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए मास्टर साहब श्री नवीन कुलश्रेष्ठ पर, आगे हुई कृपाओं के अलौकिक कृपा चरित्रों को समझने एवं समझाने का प्रयास किया जा रहा है, जिसके पढ़ने से यह तथ्य स्वतः स्पष्ट हो जायेगा कि हमारे श्री गुरुदेव भगवान सर्वज्ञ, समर्थ एवं योग की अपार शक्ति के अधिष्ठाता हैं। उन्हीं चमत्कारिक कृपा चरित्रों को स्मरण करके हमारे आदरणीय गुरुभाई श्री नवीन कुलश्रेष्ठ, गुरु पूर्णिमा के बाद, श्री सिद्धगुफा सवाई आश्रम की गुफा में बैठकर आह्लादित मन से गुरुदेव का गुणगान परम आनन्दमय भाव से कर रहे थे। 'झील वाले योगिराज' हमारे आपके गुरुभाई हैं एवं पूर्व में लिखित इस कृपा प्रसंग माँ काली (आदिवासियों की आराध्यदेवी) ने उस गाँव के मुखिया से कहा था कि इस गाँव की सभी भेड़–बकरियाँ झील वाले योगिराज के संकल्प से मरी हैं एवं आध्यात्मिक जगत में वे योगिराज हमसे कई गुना शक्तिशाली हैं। अब हमारे गुरुभाई श्री नवीन कुलश्रेष्ठ के साथ घटित अग्रिम कृपालीलाओं का वर्णन लिखकर उसे समझे एवं समझाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

श्री माँ काली द्वारा यह रहस्य बतलाने के बाद कि झील वाले योगिराज, तुम्हारे गाँव के मास्टर साहब के गुरुभाई हैं, उनको साष्टांग प्रणाम करके माफी माँगो एवं उनका खूब मान–सम्मान करो, उनकी जितनी सेवा करोगे एवं उन्हें जितना प्रसन्न रखोगे, उनकी कृपा से तुम लोग एवं तुम्हारा गाँव उतना ही खुशहाल रहेगा। माँ काली की यह बात सुनकर मुखिया, वहाँ उपस्थित सभी ग्राम–वासियों के साथ स्कूल (पाठशाला) पर आ गया एवं सब लोगों ने उनके सामने लेटकर साष्टाँग प्रणाम किया। मुखिया ने स्वयं अपना तथा अपने गाँव द्वारा हुए अपमान के लिए मास्टर साहब से बार–बार क्षमा याचना की एवं वचन दिया कि भविष्य में ऐसी गलती या अपराध नहीं होगा। मास्टर साहब ने कहा कि ठीक है, अनजान में की गयी गलती

कोई अपराध एवं पाप नहीं है, अतः मेरे मन में आप लोगों के प्रति कोई प्रतिशोध या क्रोध की बात नहीं है, आप लोग जाइये एवं कल प्रातः काल से अपने–अपने बच्चों को पढ़ने के लिए स्कूल में भेजिये। उसी रात श्री गुरुदेव भगवान ने उन्हें स्थूल रूप से दर्शन दिया, उन्हें योगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का एक फ्रेमिंग किया हुआ स्वरूप, आरती की किताब एवं जीवन तत्व साधन की किताब अपने कर कमलों द्वारा दिया एवं प्रातः ठीक पाँच बजे स्कूल की आलमारी में रखकर 'मंगला आरती करके, आरती करने की विधि बतलायी एवं स्वयं करके जीवन तत्व साधन करने की विधि समझाई एवं कहा कि नील वाला लल्ला तुम्हारा बड़ा गुरुभाई है, कोई काम हो तो उससे सलाह–मशविरा कर लेना। यदि कोई विशेष बात आयेगी तो मैं आ जाया करूंगा। महाप्रभु जी के स्वरूप की तरफ इशारा करते हुए अपने मुखारविन्द से कहा, "ये फोटो नहीं इसे अपने बाबा जी एवं हमारे पिता श्री समझना एवं जानना। पवित्रता से दोनों वक्त भोजन बनाना, उसे श्री प्रभु जी को भोग लगाना एवं उसके बाद उसे ग्रहण करना। ये श्री प्रभु जी तुम्हारी प्रत्येक क्रिया को देख रहे हैं, इसे बिल्कुल सत्य समझना। इनके सामने बैठकर अपने गुरुमन्त्र का जप करना। यदि तुम ऐसा करोगे तो कल्याणधाम श्री प्रभु जी सब प्रकार से तुम्हारा भला करेंगे। अब मैं जा रहा हूँ।" आराध्यदेव की ये वाणी सुनकर श्री नवीन जी ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया एवं श्री आराध्यदेव मुस्कराते हुए अन्तर्ध्यान हो गये।

उस दिन से आदरणीय भाई जी ने श्री गुरुदेव भगवान की आज्ञाओं का अक्षरशः पालन करना आरम्भ कर दिया। नित्य प्रातः चार–पौने चार बजे उठकर नैतिक क्रिया तथा स्नानादिक कार्य से निवृत्त होकर मंगला आरती खूब प्रेम व श्रद्धा के साथ करना एवं उसके बाद जीवन तत्व साधन करना एवं उसके बाद श्री प्रभु जी के स्वरूप के सामने बैठकर मन्त्र जप करना इनकी दिनचर्या बन गयी। उसके पश्चात् परम पवित्रता से भोजन तैयार करते, श्री प्रभुजी को भोग लगाते एवं साढ़े नौ बजे प्रातः तक भोजन करके स्कूल की नौकरी के लिए तैयार हो जाते। तब तक बच्चों का स्कूल आना प्रारम्भ हो जाता एवं प्रातः दस बजे से सायंकाल पाँच बजे तक बच्चों को पढ़ाने का कार्य किया करते थे। हमारे ये भाई जी बाजार से रामायण तथा श्रीमद्भागवत् ग्रन्थ भी खरीद कर लाये एवं सायंकाल स्कूल के कार्य से खाली होने के बाद, हाथ–पैर धोकर, कपड़े बदलकर चार–पाँच भजन गाते। श्री रामायण पढ़ते और कभी श्री मद्भागवत की कथाओं एवं कृपाओं को श्री प्रभु जी के स्वरूप के सामने बैठकर सुनाते थे। उसके बाद आरती करते, भोजन बनाकर श्री प्रभुजी को भोग लगाते एवं फिर भोजन कर विश्राम किया करते थे। अपने स्कूल के बच्चों से इन्होंने कह रखा था कि यदि पढ़ाई की कोई बात समझ में नहीं आती तो किसी समय आकर हमसे पूछ एवं समझ सकते हो। तुम लोग हमारे बच्चे हो एवं हमारे पास कभी भी आ सकते हो। दूसरे दिन प्रातः

काल से बच्चें स्कूल आना आरम्भ कर दिये। बच्चे तो बच्चे ही है एवं वह भी जब प्राइमरी स्कूल के हों तो कहना ही क्या। यह कहावत बिल्कुल इनके स्वभाव पर चरितार्थ होती है कि एक तो करेला एवं दूजे चढ़ा नीम पर, तब तो 'खुदा हाफीज' कहना ही पड़ेगा।

मास्टर साहब अर्थात हमारे आदरणीय गुरुभाई श्री नवीन जी का दरवाजा बच्चों के कारण सदैव खुला ही रहता था। बच्चे अपने घर पर गणित का सवाल लगा रहे हैं, थोड़ा प्रयत्न किये नहीं आया तो रात्रि में ही चाहे आठ बजा हो या नौ बजा हो, झोला उठाये एवं आ गये मास्टर साहब के पास एवं सवाल सीखकर घर गये। प्रातः काल चार – पाँच या छः बजे कुछ पढ़ रहे हैं, नहीं समझ में आया तो उसी समय चार– पाँच–छः बजे ही क्यों न हो, पहुँच गये पाठशाला पर मास्टर साहब के पास और अपना प्रश्न पूछना आरम्भ कर दिया। मास्टर साहब ने बच्चों को समझाया कि तुम कभी भी हमारे पास आने के साथ एक बात का ध्यान रखा करो। जैसे प्रातः काल अपने गुरुदेव भगवान की आरती कर रहा हूँ एवं तुम पहुँच गये तो तुम भी हाथ जोड़कर पीछे खड़े हो जाओ। मैं आसन कर रहा हूँ तो तुम एक तरफ बैठ जाया करो। मैं थोड़ी देर बाद स्वयं तुमसे पूछ लूंगा। खाना बना रहा हूँ एवं तुम पहुँच गये तो एक बार आवाज लगाकर बैठ जाओ, मैं समझ जाऊँगा एवं तुरन्त या थोड़ी देर बाद तुमसे स्वयं पूछ लूंगा। बालकों में नकल करने अथवा नई तरकीब सीखने की प्रबल इच्छा शक्ति होती है। अतः बालकों को आरती याद हो गयी एवं उन्होंने उसे अच्छी प्रकार याद कर लिया। इस प्रकार धीरे–धीरे बच्चों का ज्यादा समय घर की बजाय स्कूल पर ही बीतने लगा। जीवन तत्व करने वाले बालक यदि घर पर खाना खाते तो उन्हें या तो उल्टी हो जाती या पेट खराब हो जाता। सूचना मिलने पर मास्टर साहब बच्चे को स्कूल पर ही बुला लेते एवं जब वह अपना बनाया हुआ भोजन कराते, वह बालक स्वयं ठीक हो जाते। क्रमशः एक–दो–तीन करते–करते कई बालक स्कूल पर ही रहने लगे एवं उनके परिवार वाले घर से चावल, दाल, आटा, सब्जी और कुछ पैसे मास्टर साहब को देने लगे। जब बच्चों की संख्या बढ़ने लगी तो मुखिया ने गाँव वालों की मीटिंग अपने घर पर बुलाई एवं सबको कहा कि अपने–अपने घर से महिने भर का अपने बच्चे का भोजन हमारे पास पहुँचा दो। मैं सबकी सामग्री लेकर पाठशाला जाकर मास्टर साहब के पास पहुँचवा दूंगा। मैंने एक पण्डित को भोजन बनाने के लिए तय कर दिया। एक शाकाहारी औरत को बर्तन साफ करने के लिए भी निश्चित कर दिया है। कल सायंकाल तक, सब सामान नौकर एवं नौकरानी के साथ ले जाकर मास्टर साहब से प्रार्थना करूंगा कि वे इन छोटे–छोटे बच्चे–बच्चियों को स्कूल पर ही रखने की कृपा करें। मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे अवश्य हमारी प्रार्थना स्वीकार कर लेंगे। गाँव वालों ने वैसा ही किया एवं मुखिया सब सामान और एक पण्डित व एक शाकाहारी औरत के साथ प्रातः करीब नौ बजे स्कूल पहुँच गया। मुखिया महोदय ने मास्टर साहब जी को साष्टांग

प्रणाम करके प्रार्थना किया कि इन बालक–बालिकाओं को अब सब प्रकार से आप सम्भालिये। इनके असली गार्जीयन आप ही है।

मई में बच्चों की परीक्षा हो गयी एवं उनका परीक्षाफल भी आ गया। बच्चे अपने घर को छोड़कर स्कूल पर ही ज्यादा समय रहने लगे। खेलना–कूदना, खाना–पीना, सोना सब स्कूल पर ही छुट्टी के दिन भी किया करते थे। इस प्रकार करीब दो साल तक का स्कूल चला एवं हमारे आदरणीय भाई जी को खूब मान एवं सम्मान भी मिला। बालक–बालिकाओं का खाना नाश्ता आदि पण्डित जी बनाते थे एवं बर्तन वह नौकरानी साफ करती थी। सुबह–सायं ये सब अर्थात् पण्डित जी एवं नौकरानी अपना काम करते चूंकि उसी ग्राम के थे। अतः अपने घर चले जाते थे। हमारे आदरणीय भाई जी अपना भोजन स्वयं बनाते थे एवं श्री प्रभु जी को भोग लगाकर ही खाते थे। नियमित आहार–विहार के कारण बालक–बालिकाओं का स्वास्थ्य भी बहुत अच्छा बन गया। फरवरी सन् उन्नीस सौ सत्तर की बात है एवं अट्ठारह तारीख की रात्रि थी। श्री मास्टर साहब एवं सभी बच्चे पाठशाला के बड़े हाल के अन्दर सोये थे। आदरणीय मास्टर साहब तख्त पर सोये थे एवं बालक–बालिकायें अपने घर द्वार से लाये गये बिस्तर पर सो रहे थे। शुक्ल पक्ष चल रहा था। भोर के तीन बजे अर्थात उन्नीस तारीख को श्री गुरुदेव उस हाल में पहुँच गये। आराध्यदेव जी ने अपनी छड़ी से आदरणीय भाई जी के तख्त पर धीरे से आवाज की परंतु मास्टर साहब करवट घूम कर फिर सो गये। दूसरी बार श्री गुरुदेव भगवान ने छड़ी से तख्त पर थोड़ी तेज आवाज कराई। मास्टर साहब हड़बड़ाकर उठकर तख्त पर बैठ गये एवं सिरहाने श्री गुरुदेव भगवान को खड़ा देखकर प्रणाम करने की नियत से तख्त से उतरे। श्री गुरुदेव भगवान ने अपने मुखारविन्द से कहा, 'तुम्हारा प्रणाम हमें मिल गया और अब इन सभी लल्ला–लल्लियों को यथाशीघ्र जगाओ इस हाल की छत गिरने वाली है।'

मास्टर साहब ने प्रार्थना किया, 'प्रभो! इस समय तीस की संख्या में बालक–बालिकायें इस हाल में सोये हुए हैं, सबको इतना जल्दी कैसे जगाया जा सकता है। श्री गुरुदेव भगवान ने कहा, खूब जोर से आवाज लगाओ की बच्चों उठो एवं दौड़ते हुए झील पर पहुँचो। वहाँ मदारी आया है। बच्चे मदारी का खेल देखने के लिए बहुत उत्सुक रहते हैं अतः सभी जगकर झील की तरफ दौड़कर चले जायेंगे।

मास्टर साहब ने बच्चों के बीच खड़ा होकर जोर से आवाज लगाया। बच्चों झील पर मदारी आया है, जल्दी मदारी का खेल देखने चलो, मैं आ रहा हूँ। मास्टर साहब की बात सुनकर सभी बालक आँख मलते हुए उठे एवं झील पर दौड़ते हुए पहुँच गये। जब सब बच्चे हाल से बाहर निकल गये तो श्री मुख ने कहा कि लल्ला नवीन! तुम भी जल्दी हाल से बाहर निकलो। मास्टर साहब कुछ अपना सामान सहेजने लगे, तो श्री गुरुदेव ने अपने मुखारविन्द

से कहा, लल्ला! सामान की चिन्ता छोड़ो, जल्दी हाल से बाहर निकलो। आराध्यदेव के श्री मुख से यह आदेश सुनकर हाल से बाहर निकलना आरम्भ कर दिया। आगे–आगे श्री गुरुदेव भगवान एवं उनके पीछे श्री नवीन जी चल रहे थे। श्री गुरुदेव भगवान के हाल के बाहर पैर रखते ही हाल की छत एकाएक जमींदोज हो गयी। छत गिरते समय श्री नवीन जी का एक पैर अभी हाल के दरवाजे के अन्दर था। अतः श्री गुरुदेव भगवान ने उनकी बांह पकड़कर हाल से बाहर खींच लिया। उनका पूरा शरीर तो हाल से बाहर निकल गया परंतु उनके बायें पैर के पंजे पर एक ईंट गिर गयी जिससे वह पंजा चोटिल हो गया। आराध्यदेव ने उसके बाद कहा कि लल्ला! अब मैं जा रहा हूँ, अपने पैर का इलाज करा लेना। हफ्ते भर में ठीक हो जायेगा। इसके बाद श्री गुरुदेव भगवान अन्तर्ध्यान हो गये। हाल की छत गिरने से तेज धमाके की आवाज हुई एवं आसपास के घरों के वाशिन्दे इकट्ठे हो गये। उन सबों ने कहा कि मास्टर साहब! आपके स्कूल के सभी बच्चे तो हाल की छत के नीचे दबकर मर गये होंगे। अब तो हममें से कितने निःसन्तान हो गये। मास्टर साहब ने कहा कि हमारे भाई बहनों स्कूल की हाल में जो तीस विद्यार्थी सोये थे, सब बिल्कुल सुरक्षित हैं। गाँव वालो ने प्रश्न किया वो कैसे? मास्टर साहब ने कहा कि आप सभी हमारे साथ चलें। सब मास्टर साहब के साथ चलकर झील के पास पहुँचे। वहाँ सभी बच्चे सकुशल आपस में बात कर रहे थे कि मास्टर साहब कह रहे थे कि मदारी आ रहा है अभी तक तो मदारी आया नहीं? वहाँ पहुँचकर हमारे आदरणीय गुरुभाई श्री नवीन जी ने सभी लोगों से कहा, 'ये रहे आप लोगों के बच्चे।' गाँव वालों ने करिश्माई ईश्वर की कृपा देखकर खुशी के आँसू बहाने लगे एवं सबने फिर मास्टर साहब को साष्टांग प्रणाम करके कहा, 'आप! मास्टर साहब नहीं, स्वयं भगवान हैं। आपके एहसान का बदला, हम सब लोग नहीं चुका सकते।

श्री गुरुदेव के इस कृपा प्रसंग के बाद, तो मास्टर साहब का इतना मान–सम्मान बढ़ गया कि उसको ये पचा नहीं पाये एवं बहुत ही परेशान रहने लगे। इनकी परेशानी का एक कारण यह भी था कि आराध्यदेव ने इन पर ऐसी कृपा की, कि इनकी वाणी में सत्य प्रभासित होने लगा। ये जो भी बात किसी को अपने मुख से कह देते, वह बिलकुल सत्य हो जाती थी। इसका प्रचार एवं प्रसार उस पूरे इलाके (क्षेत्र) में हो गया। परिणामस्वरूप इनको अपने स्कूल के बच्चों की पढ़ाई, श्री प्रभु जी की आरती, जीवन तत्व साधन करने तथा अनेक इसी प्रकार के नैतिक कार्यक्रमों में व्यवधान पड़ने लगा, क्योंकि हर समय लोग अपनी लौकिक तथा पारलौकिक कामनाओं की पूर्ति के लिए आशीर्वाद लेने हेतु हाथ जोड़े खड़े रहते थे। कभी–कभी भीड़ की अधिकता एवं व्याकुलता में यदि किसी को कुछ कह दिया तो वह तत्काल फलदाई हो जाता था। प्राणाधार श्री गुरुदेव भगवान की ऐसी विलक्षण एवं अनहोनी कृपा से हमारे आदरणीय गुरुभाई श्री नवीन जी आजिज आकर, अपने अन्यत्र, स्थानान्तरण की प्रार्थना करने गुरुधाम श्री सिद्धगुफा आये थे। इनके पहुँचने के समय आराध्यदेव भोजन

करके विश्राम कर रहे थे। अतः उन्हें जगाना उचित न समझकर उनका गुणगान कर रहे थे। हमारे प्रिय गुरुभाई एवं मित्र ने ठीक ही कहा है कि:–

अब तो कुछ गुरुवर से माँगू। ऐसे है हालात नहीं।।
इतना दिया है श्री गुरुवर ने। जितनी मेरी औकात नहीं।।

उपरोक्त कृपा चरित्रों को हमारे आदरणीय गुरुभाई श्री नवीन कुलश्रेष्ठ जी ने हमारे एक आदरणीय गुरुभाई से कमरा नम्बर एक और दो के पीछे, कदम्ब के पेड़ के नीचे बने चबूतरे पर बैठकर आह्लादित मन से सुनाये एवं सुनाते समय कई बार उनकी वाणी श्री गुरुप्रेम के कारण अवरुद्ध हो गयी एवं उनकी आँखें भर आई। श्री गुरुकृपा चरित्र पूर्ण होने पर दोनों आदरणीय गुरुभाईयों के आपस में सादर जयगुरुदेव का आदान–प्रदान किया एवं उसके बाद श्री सिद्धगुफा के सामने आ गये। अब करीब साढ़े पाँच बजे का समय हो गया था एवं आराध्यदेव भी अपने श्रीगुरुभवन से निकलकर गुफा की तरफ स्थित आँवले पेड़ के नजदीक, जो श्री भवन के पास ही था, आकर अपनी आराम कुर्सी पर विराजमान हो गये। उधर से आने वाले हमारे आदरणीय द्वय आराम कुर्सी के सामने बिछे टाट-पट्टी पर बैठ गये। बिल्कुल शान्त एवं एकान्त का वातावरण था। आराध्यदेव ने खामोशी तोड़ते हुए श्री नवीन जी से प्रश्न किया, 'लल्ला! क्या नाम है, कहाँ से आये हो?

श्री नवीन जी ने हाथ जोड़कर प्रार्थना किया, 'गुरुदेव जी! मेरा नाम नवीन कुलश्रेष्ठ है तथा आप द्वारा लगाई गयी मास्टर की नौकरी करने वाले स्थान मध्य प्रदेश के बस्तर जिले के एक प्राइमरी पाठशाला से आया हूँ।' योग माया समावृत्ता' की स्थूल प्रमाणिकता के बेजोड़ उदाहरण श्री गुरुदेव ने साश्चर्य प्रश्न किया, 'क्या लल्ला! मैंने तेरी नौकरी लगायी।' हाँ गुरुदेव! आपने श्री सिद्धगुफा में हमारे सिर पर हाथ रखकर योग दीक्षा दी थी एवं बिना बान्ट भरे हमारी नौकरी शिक्षा विभाग में अध्यापक के पद पर लगाई है।' श्री गुरुदेव ने उनकी बात सुनकर कहा, ये तो बड़ा अच्छा हुआ लल्ला! श्री गुरुदेव ने मुस्कराते हुए कहा कि लल्ला सब ठीक तो है। गुरुदेव जी! ठीक तो इतना है कि उसका वर्णन करने में मैं असमर्थ हूँ। आप वहाँ से हमारा ट्रांसफर कहीं और कराने की कृपा करें। श्री गुरुदेव ने कहा क्यों? प्रभो! आपने इतना मान–सम्मान दिलवा दिया कि वहाँ मैं अपना नैतिक कर्म भी नहीं कर पा रहा हूँ। श्री गुरु–शिष्य के इस सम्वाद को वे लोग ही समझ रहे थे। अब तो हम अपने जैसे गुरुभाईयों के लिए, श्री चरणों में इस प्रार्थना के साथ प्रसंग विश्रामित करते हैं कि–

की है स्वस्थ्य–निरोग ये काया, धन दौलत की कमी नहीं।
सबको दिया है श्री गुरुवर ने, एक अकेले हमीं नहीं।।

श्री कामाख्या यात्रा वृत्तान्त

डॉ. विजय सिंह

योग–साधना एकान्त चाहता है। साधना हेतु सिद्ध सद्गुरु की कृपा आवश्यक है। क्योंकि जन्म–जन्मान्तरों के संचित कर्म बीज कर्माशय से प्रक्षिप्त होकर अन्तःकरण मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार को प्रभावित कर भुगतान को प्राप्त हो नष्ट हो जाते हैं। योग दर्शन के सिद्धान्तों को समझाते हुए श्री गुरुदेव भगवान बताये हैं कि यदि साधक विवेक ख्याति की ओर बढ़ रहा हो तो उसके परम क्लिष्ट संस्कारों को सूक्ष्म में भुगतान सद्गुरु कृपा से हो जाया करता है। श्री गोपालानन्द जी का जल भरते हुए ऋषिकेश आश्रम में हाथ में चीरा (कट) लगने की घटना के पीछे जो संस्कार पूर्व जन्मों का आया था वह मृत्यु कारक था परंतु सद्गुरु कृपा से वह भुगतान अत्यन्त अल्प में समाप्त हो गया, क्योंकि सम्प्रज्ञात के उच्च भूमिका में उनका अन्तःकरण लय रहा करता था।

शुभ प्रकाश की तेज में मन्द प्रकाश लय हो जाता है। स्वामी मुलखराज जी तुरीय स्थिति में लीन शाम्भवी मुद्रा में त्रिनेत्र की ज्योति के सहारे अमृतसर शहर में बन्द आँखों श्री महाप्रभु जी के पास मदमस्त चाल से पहुँच जाया करते थे। उन दिनों दंगे–फसाद आये दिन होते रहते थे। बाह्य वृत्ति वाले शिष्यों ने महाप्रभु जी से कहा– प्रभो! भाई जी (स्वामी मुलखराज जी) को आप आज्ञा कर दें, आपके दर्शनार्थ इन उपद्रवों से भरे दिनों में वे न आया करें। श्री महाप्रभुजी हँस कर बोले उसकी चिन्ता मत करो। उसकी चिन्ता स्वयं सदाशिव करते हैं। उसका कौन क्या बिगाड़ सकता है?

एक दिन ऐसी दिव्य अवस्था में आँख बन्द किये जब श्री महाप्रभुजी के पास जा रहे थे अचानक स्वामी मुलखराज जी को लगा कोई उच्च शक्तिवान उन्हें आकर्षित कर रहा है। वे बन्द आँखों से ही उस दिशा में चलते–चलते शहर से बाहर एक एकान्त जगह पहुँच कर रुक गये। उनकी चर्म चक्षुओं के सामने एक योगिराज जटा–जूट मण्डित खड़े थे। वे बोले – बेटा आ गये। अच्छा हुआ दो जन्म पहले तुमसे भविष्य में मिलने की बात कर रखा था। वह अब पूरा हो गया। तुम इस समय महायोगेश्वर की कृपा पाकर कृत–कृत्य हो रहे हो। इसलिए अब हमें कुछ नहीं करना है। ऐसा कहकर दो चार मिनट बात करके वहीं अन्तर्ध्यान हो गये।

हम मन्दाधिकारियों को यह पता ही नहीं चल पाता कि जीवन में कौन सी घटना क्यों और कैसे घट रही है? कभी–कभी स्वप्न में, अथवा ध्यान में आने वाले शुभ–अशुभ कर्मों का भुगतान श्री गुरुदेव भगवान अपने बच्चों को कराते ही रहते हैं। ध्यानाभ्यास, मंत्र जाप से ही सद्गुरु कृपा पाने पर क्लिष्ट संस्कारों का सहज भुगतान हो जाया करता है। इस लेख में एक

ऐसी घटना का वर्णन कर देना अभीष्ट जान पड़ता है।

गताक लेख में उमानन्दा (गोहाटी) में काले वस्त्र धारी भैरव तान्त्रिक से सहज विवाद के पश्चात् नारंगिया में क्वार्टर पर लौटा। परंतु यह घटना मन में थोड़ी चिन्ता जगा गया। क्योंकि दस–पन्द्रह वर्ष पूर्व हुए स्वप्न की याद अचानक स्मृति पटल पर उभर आयी।

गोरखपुर में एक रात्रि बड़ा स्पष्ट स्वप्न आया। जाड़े का शायद दिसम्बर माह था। स्वप्न में देख रहा था भीड़–भाड़, चतुर्दिक बाग–बगीचे। उस भीड़ में एक लम्बा गौर वर्ण काला चोंगा पहने मस्तक पर भस्म लेप एवं जटा लपेटा हुआ महात्मा दिखाई पड़ा। वह किसी को जैसे खोज रहा हो। मैं बाग के एक बेंच पर बैठा उसे अपनी ओर आता देख रहा था। भीड़–भाड़ मेरे पास भी थी। परंतु वह थोड़ी दूर से ही मुझे देखकर क्रुद्ध हो मेरे ऊपर मंत्रोपचार करता उद्यत दिखा। उस समय श्री सद्गुरु चरणों का स्मरण होते ही मेरे मन में भी प्रतिकार करने की भावना के साथ ही मन में तीव्र तेज का चक्राकार लहर पैदा होना शुरू हुआ तभी हमने स्वप्न में देखा श्री सद्गुरु देव प्रसन्न मुद्रा में प्रकट हो कर मुझे प्रतिकार रूप शक्ति संचरण से मना कर रहे है। मेरे मन के अन्दर उठा प्रतिशोध श्री सद्गुरु दर्शन होते ही शाँत हो गया। तभी तिर्यक पीला मान्त्रिक तेज उस महात्मा की उंगलियों से निकल कर मेरे बायें भाग पर चोट किया। श्री सद्गुरु भगवान आश्वस्त करते हुए ज्यों तिरोधान हुए मेरी नींद खुल गयी।

रात्रि में ही तीव्र बुखार चढ़ा बाँये फेफड़े में हल्का दर्द एवं खाँसी शुरू हो गया था। जबकी भला चंगा खा पीकर रात्रि को सोया था। ज्वर एक दो रोज में समाप्त हो गया परंतु खाँसी और बलगम की मात्रा ज्यों –ज्यों दवा की बढ़ता गया। अन्त में सम्पूर्ण विवरण स्वप्न का लिखकर गुरुदेव के चरणों में पत्र प्रेषित किया। कफ की मात्रा इतनी अधिक थी कि मन में आश्चर्य होता था कि सारा खाना कफ में ही परिवर्तित हो रहा हो।

कॉलेज जाने के लिए निकल रहा था। गेट के बाहर एक देहाती सा व्यक्ति साईकिल के पीछे कैरियर पर एक थैला लिये खड़ा था। मैंने उससे पूछा-- क्यों खड़े हो? वह बोला– मेवे बेच रहा हूँ आपको कम दाम में दूँगा। उससे काजू, बादाम, किसमिस, अखरोट लेकर घर में रखकर कुछ कोट के जेब में डाल खाता हुआ स्कूटर से कॉलेज गया। आश्चर्य! अस्सी फीसदी खाँसी और बलगम का निकलना एक मुट्ठी मेवे से ठीक हो गया। कॉलेज से लौटने पर श्री गुरुदेव भगवान का आशीर्वादात्मक पत्र मिला। श्री प्रभुजी ने लिखा था कि, जब तक यह पत्र तुम्हें प्राप्त होगा आशा है तुमको काफी स्वास्थ्य लाभ हुआ होगा। वे परमकरुणार्णव अपने बच्चों की सम्भाल करते ही रहते है। तुम उनके अभय चरणों का बराबर चिन्तन करते रहा करो। दो हफ्ते में पूर्व कालों का संस्कार थोड़े में भुगतान उन परम भक्त वत्सल जी ने करा दिया।

जो साधक धारणा, ध्यान, समाधि (सम्प्रज्ञात एवं असम्प्रज्ञात) के अभ्यास में लगे हुए है उनके कर्माशय में प्रसुप्त कर्म बीज (जन्म–जन्मान्तरों के) अभ्यास के फलस्वरूप उद्दीप्त होकर अहंकार द्वारा चित्त में प्रक्षिप्त होकर दृश्य रूप धारण कर कर्म–भोग के रूप में ध्यान–दर्शन, स्वप्न दर्शन अथवा योग निद्रा के रूप में तथा अति क्लिष्ट संस्कार बीज होने पर स्थूल शरीर पर प्रकट होकर भुगतान हुआ करता है।

सामान्य रूप से स्वप्न का फलादेश बताने वाले लोग यह बतलाते हैं कि यदि कोई व्यक्ति सुखद स्वप्न देखता है कि वह शादी करने जा रहा है, खूब शान–शौकत, मौज महफिल में बैठा प्रसन्न हो रहा है इसका मतलब यह है कि जो सुख जीवन में स्थूल रूप से घटित होना था वह मात्र घण्टे–दो घण्टे निद्रा में घटित हो फल दे गया। यथार्थ में अब वैसा घटित नहीं होगा। परंतु यदि कोई अपने मृत्यु या बड़े क्लेश युक्त स्वप्न देख कर स्वप्न में ही अथाह पीड़ा को भोग रहा है, ऐसा देखता है तो लोग कहते हैं कि तुम्हारे महान कष्ट थोड़े में भुगतान हो गया।

खैर! योग–दर्शन में संस्कार रूप कर्म बीजों को योगी ध्यान तथा विवेकख्याति समाधि द्वारा समूल रूप से बीज–दग्ध कर देते हैं अथवा उन्हें सूक्ष्म में भोग कर उनके पुनः प्रभावी होने की सम्भावना को समाप्त कर देते हैं। निर्विघ्न साधना की पराकाष्ठा उसे ही प्राप्त होता है जो ध्यान एवं सम्प्रज्ञात ज्योति द्वारा कर्माशय में जन्म–जन्मान्तरों के संस्कार रूप कर्म बीजों को भली–प्रकार देख–जानकर सद्गुरु कृपा से कर्माशय कर्म बीजों से पूर्णतया मुक्त कर लेते हैं। ऐसी अवस्था में ही योगी परावर दर्शन का पात्र बनता है। उसे ही निर्वाणोत्मुखी वृत्त में स्थाई रूप से अवस्थान प्राप्त होता है। अन्यथा कर्माशय के उद्दीप्त शुभ–अशुभ संस्कार प्रकट होकर भोग परिणामों में साधक को नीचे की ओर खींच लिया करते हैं।

श्री सद्गुरु भगवान का कथन है जो मेरी आज्ञा में रहकर साधन करता है, उसके गुरुदेव साधक के संस्कारों को सूक्ष्म में निपटारा कर दिया करते हैं।

अवतार मीमांसा

डॉ. जय नरायण राय, आजमगढ़

भगवान श्री कृष्ण अर्जुन को परासत्ता का बोध कराना चाहते हैं। इस पर अर्जुन भगवान श्री कृष्ण से कहता है कि आपका जन्म तो बहुत बाद का है, जबकि सूर्य का जन्म बहुत पहले का है। तब मैं यह कैसे मान लूं कि सृष्टि के प्रारम्भ में आपने सूर्य को यह योग बताया। अर्जुन सामान्य दृष्टि से भगवान श्री कृष्ण को मनुष्य रूप में देखता है। उसने श्री कृष्ण को अभी तक गुरु–रूप से ही स्वीकार किया है, उनके प्रति भगवद् बुद्धि अभी उसकी नहीं है। अध्याय 2 के श्लोक 7 में वह शिष्यत्व स्वीकार करते हुए श्री कृष्ण से 'शिक्षा की उपदेश' की याचना करता है, कहता– 'शिष्यस्तेह शाधि।' भगवान श्री कृष्ण बीच–बीच में वार्तालाप के प्रसंग में अपनी भगवत्ता प्रकट करने की चेष्टा तो करते हैं, पर अर्जुन उसे पकड़ नहीं पाता। भगवान श्री कृष्ण ने अध्याय 3 के श्लोक 3 में और अध्याय 2 के श्लोक 39 में 'पुरा', शब्द का प्रयोग दो निष्ठाओं के साथ करके अपनी भगवत्ता का संकेत देकर यह ध्वनित करना चाहते थे कि पुराकाल में यानी सृष्टि के प्रारम्भ में ही मैंने दो निष्ठाओं की बात कही है। पर अर्जुन भगवान का सूक्ष्म संकेत नहीं पकड़ पाया।

भगवान श्री कृष्ण अपनी भगवत्ता का दूसरा संकेत अध्याय 3 के श्लोक 22 से 24 में देते हैं, जहाँ वे कहते हैं कि अर्जुन, देखो मेरा कोई कर्त्तव्य नहीं, फिर भी मैं सतत् कर्म में लगा रहता हूँ और यदि मैं कर्म करना बन्द कर दूं तो सारे लोक भ्रष्ट हो जायें। परन्तु तब भी अर्जुन संकेत को पकड़ नहीं पाता। वह यही सोचता है कि जैसे श्री कृष्ण ने जनकादि ज्ञानियों का उदाहरण दिया, जो लोक संग्रह के लिए कर्म करते थे, उसी प्रकार श्री कृष्ण भी एक ज्ञानी व्यक्ति हैं, जो लोक संग्रह के लिए सतत् कर्म में लगे हुए हैं।

भगवान श्री कृष्ण ने अध्याय 3 के श्लोक 30 से 32 में तीसरा संकेत भगवत्ता का दिया। वहाँ अर्जुन को सब कर्म उन्होंने स्वयं अपने को समर्पित कर श्रद्धा रखने को कहा और यह भी चेतावनी दी कि जो उनमें श्रद्धा रखकर उनके मत के अनुसार चलते हैं वे तो कर्मों के बन्धन से छूट जाते हैं, पर जो उनके प्रति दोष बुद्धि रखकर उनके मत का विरोध करते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं। पर यह सुनकर अर्जुन को लगा कि श्री कृष्ण यह कैसा अहंकार युक्त वचन कह रहे हैं, किंतु तब भी उसने उन्हें एक गुरु के रूप में ही देखा और सोचा कि जैसे गुरु अपने शिष्य को चेतावनी दिया करते हैं, उसी प्रकार ये भी मुझे चेतावनी ही दे रहे हैं।

जब भगवान श्री कृष्ण ने देखा कि उनके तीनों संकेत वृथा ही गये और उनका प्रिय सखा अर्जुन उनके संकेतों को न पकड़ सका, तब वे स्पष्ट रूप से अपनी भगवत्ता को प्रकट

करने के लिए चौथे अध्याय के श्लोक 1–3 में कहते है कि सृष्टि के आदिकाल में उन्होंने सूर्य को इस योग का उपदेश दिया था। अर्जुन की विशेषता यह है कि भगवान् श्री कृष्ण के प्रति उसकी अशंकनीय श्रद्धा है क्योंकि अर्जुन श्री कृष्ण के प्रति ''मां त्वां प्रपन्नम्' 'आप की शरण में आये हुए मुझको, तहेदिल से कहता है। अर्जुन को भले ही श्रीकृष्ण का सूर्य को उपदेश देने वाला कथन अटपटा लगा हो, पर वह सोचने लगा कि श्री कृष्ण तो कोई बेतुकी बात कहेंगे नहीं, मैं ही उनका अभिप्राय नहीं समझ पा रहा हूँ, अत: उन्ही से पूछ लूँ कि उनके इस कथन का मर्म क्या है? इसीलिए वह उपर्युक्त प्रश्न पूछता है। शंकराचार्य यहाँ पर भाष्य करते हुए लिखते है कि 'कथम् एतद् विजानीयम् अविरुद्धार्थतया' मैं आप के कथन को अविरुद्धार्थयुक्त' कैसे समझूं। विरुद्धार्थयुक्त का तात्पर्य होता है अमंगल। अत: अर्जुन का प्रश्न है कि मैं आपके कथन को सुसंगत कैसे समझूँ।

गीता में अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण से जिज्ञासायुक्त प्रतिप्रश्न करते है। इसीलिए भगवान् श्री कृष्ण ने असन्दिग्ध शब्दों में अर्जुन के समक्ष अपनी भगवत्ता प्रकट कर दी। अर्जुन जैसे अधिकारी पुरुष ही भगवान् की ऐसी कृपा के पात्र होते हैं। भगवान् श्री कृष्ण ने चौथे अध्याय के श्लोक 3 में ही कह दिया है कि अर्जुन, तू मेरा भक्त भी है और सखा भी और यह कह कर उन्होंने अर्जुन के अधिकार पर मुहर लगा दी है।

भगवान् श्री कृष्ण ने अर्जुन को अपनी भगवत्ता को गीता के चौथे अध्याय के श्लोक 5 व 6 में स्पष्ट करते हैं–

बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप।।
अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया।।

अर्थात् 'अर्जुन मेरे और तेरे बहुत से जन्म बीत गये हैं। उन सबको मैं तो जानता हूँ पर हे परन्तप, तू नहीं जानता। मैं अजन्मा, अविनाशी और सब प्राणियों का नियामक ईश्वर होता हुआ भी अपनी प्रकृति का आश्रय ले निज माया के द्वारा जन्म ग्रहण करता हूँ।' शंकराचार्य ने विवेच्य पांचवें श्लोक पर अपने भाष्य में लिखते हैं कि श्री कृष्ण अर्जुन को उसके अपने पूर्व जन्मों के सम्बन्ध में न जानने का कारण बताते हुए कहते है कि अर्जुन 'धर्माधर्मादि प्रतिबद्ध ज्ञान शक्तित्वात् त्वं न जानीषे– पुण्य–पाप आदि के संस्कारों से तेरी ज्ञान शक्ति आच्छादित हो रही है, इसलिए तू नहीं जानता। पर अहं नित्यशुद्धबुद्धमुक्त स्वभावाद् अनावरणज्ञानशक्तिः इति वेद' मैं तो नित्य शुद्ध–बुद्ध मुक्त स्वभाव वाला हूँ, इस कारण मेरी ज्ञानशक्ति आवरण रहित है, इसलिए मैं जानता हूँ। भगवान् श्री कृष्ण की ज्ञान

शक्ति आवरण रहित क्यों है, इसका कारण श्लोक 6 में ऊपर बताया गया है।

अवतार तत्व को जानने के लिए परासत्ता या भगवत्ता के विशेष लक्षण हैं जो निम्नवत् हैं–

1. भगवान का जन्म मैथुनी नहीं होता, अर्थात् जिस प्रकार जीव का जन्म माता–पिता के रज और वीर्य के संयोग से होता है अवतार का वैसा नहीं होता।
2. भगवान को अपने जीवन के प्रारम्भ से ही अपने दैवी स्वरूप का भान होता है, इसलिए बचपन से ही उन्हें माया का स्पर्श नहीं रहता।
3. अवतारी पुरुष अतिशय आध्यात्मिक क्षमता से शरण में आये लोगों का कल्याण एवं ईश्वरत्व प्रदान करते रहते हैं।
4. अवतारी पुरुष में एक अपूर्व आकर्षणी शक्ति होती है, जैसी संसार में और कहीं पायी नहीं जाती।

भगवान श्री कृष्ण ने जीवात्मा को भी अज और अव्यय बतलाया है – 'अजो नित्यः शाश्वतोऽयंपुराणः (2/20), तब यदि वे भी अज और अव्यय हैं, तो उनमें और जीवात्मा में क्या कोई अन्तर नहीं है? परम ज्ञान की दृष्टि से तो नहीं है, पर व्यवहार की दृष्टि से है। ज्ञान की दृष्टि से जीवात्मा ब्रह्मस्वरूप ही है और भगवान श्री कृष्ण भी अपने स्वरूप से ब्रह्म ही हैं। पर व्यवहार की दृष्टि से अन्तर यह है कि भगवान समस्त भूतों के ईश्वर हैं। जीव तो कर्मवश शरीर का ग्रहण और परित्याग करता है पर भगवान किसी कर्म के वश में नहीं, बल्कि कर्म उनके वश में हैं। संक्षेप में अवतार तत्व की मीमांसा से यह स्पष्ट होता है कि भगवान श्रीकृष्ण स्वरूप से अज हैं, अव्यय हैं, प्राणियों के नियमनकर्त्ता ईश्वर हैं, फिर भी वे अपनी प्रकृति का आश्रय लेकर अपनी माया की सहायता से शरीरधारी बनते हैं।

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह॥

– श्रीमद् भगवद् गीता

हे अर्जुन! बिना श्रद्धा के किया हुआ हवन, दिया हुआ दान और तपा हुआ तप तथा जो कुछ भी किया हुआ शुभ कर्म है– वह समस्त 'असत' – इस प्रकार कहा गया है इसलिए वह न तो इस लोक में लाभदायक है और न मरने के बाद ही।

भजन

अनुराग तिवारी, प्रभु श्री रामलाल संगीत महाविद्यालय, झांसी

आ जाओ प्रभु अब तो तुम से ही सहारे हैं।
तुम दूर सही हम से पर हम तो तुम्हारे हैं।।

1. *इस झूठ की दुनिया में धोखा ही धोखा है,*
कैसे पहुँचे तुम तक इसने हमें रोका है,
इसने हमें रोका है,
मतलब की दुनिया में अब कौन हमारे हैं।
तुम..........

2. *मझधार में है नैया तब तुमको पुकारा है,*
सुख दो या दुख भर दो प्रभु काम तुम्हारा है,
प्रभु काम तुम्हारा है,
पतवार बनो प्रभु जी बड़ी दूर किनारे हैं।
तुम..........

3. *कण कण में बसे होकर आवाज ना सुन पाये,*
बतला दो प्रभु हमको जायें तो कहां जायें,
जायें तो कहां जायें
हम मिल ना सके तुम से यही कष्ट हमारे हैं।
तुम..........

श्री गीतामृत पदावली

प्रेषक : डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी, गोरखपुर

(गतांक से आगे)

श्री भगवानुवाच

मन चंचल है, अतः कठिन है, कर लेना इसको स्वाधीन।
कर विराग-अभ्यास-युक्त नर, कर सकता है इसे अधीन।।35।।

आत्मदमन के बिना योग है, अति दुर्लभ, यह बात सही।
यत्नशील रह, मन वश करते, नर पुंगव हे तात वही।।36।।

अर्जुन उवाच

श्रद्धा हो, पर दमन नहीं हो, नहीं योग में मन सुस्थिर।
योग सिद्धि यदि प्राप्त न हो तो, क्या गति उसको मिलती फिर।।37।।

ब्रह्म-मार्ग में अचल न होकर, आश्रयहीन मूढ़ वह भ्रष्ट।
वायु विखंडित घन सा ही क्या पूर्ण रूप से होता नष्ट।।38।।

मेरी इस शंका को भगवन कर सकते हो दूर तुम्हीं।
इस संशय को हरने वाला इस जग में है और नहीं।।39।।

श्रीभगवानुवाच

नाश न होता उसका अर्जुन! यहाँ, वहाँ या और कहीं।
शुभ कर्मों का करनेवाला, दुर्गति पाता कभी नहीं।।40।।

पुण्य लोक में जाकर करता दीर्घ काल तक वहाँ निवास।
फिर जन्मे वह ऊँचे कुल में, पावन घर में करता वास।।41।।

ज्ञानवान् योगी के कुल में, भी सम्भव उसका जाना।
जो दुर्लभ और कठिन बड़ा है ऐसा जन्म यहाँ पाना।।42।।

पा लेता है वहाँ पार्थ ! वह पूर्व-बुद्धि का फिर संयोग ।
योग सिद्धि के लिए धनंजय! फिर से वह करता उद्योग।।43।।

विवश खींच लेता है उसको, पूर्व-जन्म का ही अभ्यास।
पाता योग-जिज्ञासु पुरुष भी, शब्द-ब्रह्म के पार निवास।।44।।

यत्नशील योगी का अर्जुन! पाप नष्ट जब हो जाता।
पाकर सिद्धि बहुत जन्मों में, उत्तम गति वह है पाता।।45।।

ज्ञानी तथा तपस्वी से भी, उत्तम योगी को जानो।
अतः बनो योगी तुम, उसको उत्तम कर्मी से मानो।।46।।

जो श्रद्धायुत होकर मानव, भजता मुझको धर कर ध्यान।
सकल योगियों में हे अर्जुन! समझूँ उसको युक्त महान।।47।।

अध्याय – 7

श्रीभगवानुवाच

मेरे आश्रय योग साधकर, रखकर संतत मेरा ध्यान।

सुनो पार्थ! कैसे तुम मुझको, पूर्णरूप से लोगे जान।।1।।

ज्ञान-सहित विज्ञान तुम्हें अब, पूर्णतया बतलाता तात।
जिसे जानकर तुम्हें नहीं, ज्ञातव्य रहेगा कुछ अज्ञात।।2।।

कहीं सहस्र जनों में कोई, सिद्धि-प्राप्ति का रखता ध्यान।
यत्नशील सिद्धों में कोई, तत्व-सहित पाता मम ज्ञान।।3।।

अग्नि, वायु, जल, बुद्धि, धरित्री, अहंकार मन औ आकाश।
इन भागों में प्रकृति बटी है एवं पाती पार्थ ! विकास।।4।।

अपरा यही प्रकृति तुम जानो, तथा अन्य है प्रकृति परा।
जीवभूत है यही दूसरी, जिसमें धारित पूर्ण धरा।।5।।

सब जीवों की योनि यही है सबका जन्म इसी से जान।
इस समस्त जग का हे अर्जुन! प्रभव, प्रलय मुझको ही मान।।6।।

मुझसे परे किसी का होना, कहो पार्थ! सम्भव कैसे।
सब तो मुझमें गुथे हुए हैं, तागे में मणिगण-जैसे।।7।।

जल में रस कुन्तीसुत मैं हूँ चन्द्र-प्रभा रवि-तेज प्रबल।
तथा प्रणव वेदों में मैं हूँ, शब्द गगन में, नर का बल।।8।।

(शेष अगले अंक में)

बोध कथा

हमें अपने बारे में कुछ खबर नहीं

हमारा ध्यान हमेशा दूसरों पर रहता है, स्वयं पर नहीं, हमारे मन में हमेशा दूसरों के प्रति आकर्षण रहता है, स्वयं के प्रति नहीं, हमारा मन भी हमेशा दूर-दूर भागता रहता है, अपने पास नहीं आता। आंखें दूसरों को ही देख पाती हैं अपने आपको नहीं, कान दूसरों को ही सुना करते हैं अपनी नहीं सुनते। इसका परिणाम यह है कि हमें अपने बारे में कुछ खबर नहीं। हम दूसरों के बारे में तो खूब जानते हैं पर खुद के बारे में कुछ नहीं जानते। हमारी बड़ी तीव्र इच्छा रहती है कि हम अधिक से अधिक लोगों को जानें, अधिक से अधिक लोग हमें जाने, हम लोकप्रिय हों, प्रसिद्ध हों पर हम अपने आप को जानने की कभी कोशिश नहीं करते जबकि सबसे पहले तो हमें खुद को ही जानने की कोशिश करनी चाहिए थी। हम अपने बारे में जो कुछ जानते हैं वह सत्य नहीं, मिथ्या है, शाश्वत नहीं, नाशवान है क्योंकि आज है पर कल को नहीं रहेगा, जैसा आज है वैसा कल नहीं रहेगा। हमारे ऋषियों ने कहा था- 'स्वाध्यायान्माप्रमदः' अर्थात् अपने आपको अध्ययन करने में, अपने आपको जानने में आलस्य मत कर, भूल मत कर। हमें पता नहीं है कि हम अपने आपमें कितनी मूल्यवान सम्पदा, कैसे अपार शक्ति और कैसी अद्भुत सम्भावना छिपाये हुए हैं। हमें इस सम्पदा की खबर नहीं है और हम भिखारी की तरह दूसरों से मांगते रहते हैं, दूसरों पर निर्भर रहते हैं, हमारी मांगे कभी खत्म नहीं होतीं और मांगे पूरी करते-करते यह जीवन बीत जाता है। काश ! हमें अपने आप में छिपी सम्पदा का ज्ञान हो जाता।

एक महानगर के प्रमुख बाजार की सड़क के किनारे बैठा एक भिखारी वर्षों तक भीख मांगता रहा। उस जगह उसे चीथड़ों में लिपटा, भीख मांगते हुए देखने के लोग अभ्यस्त हो चुके थे। एक दिन वह मर गया। लावारिस था सो लोगों ने उसका अन्तिम संस्कार किया। वह स्थान बहुत गन्दा हो गया था, लोगों ने वहां सफाई करवाई लेकिन गन्दगी और बदबू जाती न थी क्योंकि वर्षों से वह गन्दा भिखारी वहां पड़ा हुआ था तो किसी ने सलाह दी कि इस जगह की थोड़ी मिट्टी खुदवा कर फेंक दो और इन चिथड़ों में आग लगा दो। जब मिट्टी खोदी गई तो वहां भारी मात्रा में गड़ा हुआ धन निकला। पुलिस को खबर की गई और पुलिस ने पूरे धन का पंचनामा बनाया तो सोने चांदी के जेवरों के अलावा हीरे जवाहरात व सोने के सिक्के भी पाये गये। सबकी कीमत लाखों में नहीं करोड़ों में थी। यह देख कर लोग बोले कि कैसा अभागा था यह भिखारी। कितनी धन सम्पदा अपने नीचे दबाए बैठा था पर उसे इसका पता ही नहीं था, उसने ऐसी कोई कोशिश भी नहीं की क्योंकि उसे इसका ज्ञान ही नहीं था। *काश! कोई उसे इसका ज्ञान करा देता।*

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/2009-11
JUNE 2011

प्रेषक कार्यालय :

सिद्धयोग

योग विज्ञान का प्रतिपादक
... का हिन्दी पत्रिका

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सैंयाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER
BOOK-POST

श्री/श्रीमती ______________________

____

____

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

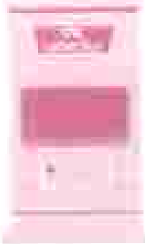

उत्पाद (सामान) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना -

निम्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. डाक लिफाफों पर लोगो अंकन [illegible] का विज्ञापन
2. लेटर बॉक्सों पर स्थान का प्रायोजन (सीमित)
3. [illegible] पर स्थान का प्रायोजन [illegible] रु. 1000 प्रति [illegible] प्रतिमाह [illegible] रु. 100.00 प्रति [illegible]
4. [illegible] विज्ञापन दर रु. 3.50 प्रति वर्ग [illegible] प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर या बाहर [illegible] कोई अथवा पोस्टर [illegible] विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर के [illegible] विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति कार्ड [illegible] का मूल्य रु. 400/-
7. [illegible] पोस्ट कार्ड के माध्यम से विज्ञापन [illegible] पोस्ट कार्ड के आधे भाग पर [illegible] का विज्ञापन [illegible] रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। [illegible] पोस्ट कार्ड का [illegible] मूल्य [illegible] 25 पैसे मात्र।

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री [illegible] जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रामलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सैंयाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14586 सम्पादक : आचार्य प्र. (डॉ.) रामलाल शर्मा